ISSN : 2454-6874

देस हरियाणा

साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच

अंक – 42, सितंबर-अक्तूबर, 2022

संपादक	**सुभाष सैनी**
सह-संपादक	अरुण कैहरबा
सम्पादन सहयोग	जयपाल, कृष्ण कुमार, राजकुमार जांगड़ा
सलाहकार	प्रो. टी.आर. कुंडू, सुरेन्द्रपाल सिंह, परमानंद शास्त्री, अशोक भाटिया, सत्यवीर नाहड़िया
प्रबंधन	कीर्ति सैनी, योगेश शर्मा, गुरदीप भोंसले
प्रकाशक	सत्यशोधक फाउंडेशन, 912 सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र हरियाणा
संपर्क	सुभाष चंद्र - 94164-82156
	विकास साल्याण - 90501-82156
Email	haryanades@gmail.com
Website	desharyana.in
सहयोग राशि	एक प्रति ₹ 50 मात्र
व्यक्तिगत:	₹300 (वार्षिक) संस्था:₹500 (वार्षिक) (पंजीकृत डाक खर्च समेत)
आजीवन:	₹5000 संरक्षक: ₹10000

ऑनलाईन भुगतान के लिए

Account Name:	Satyashodhak Foundation
Bank Name	Indian Bank, Sector -13
Account No.	50490177180

प्रकाशित रचनाओं में प्रस्तुत विचार एवं दृष्टिकोण से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
सम्पादक एवं संचालन अव्यवसायिक एवं अवैतनिक, समस्त कानूनी विवादों का न्याय-क्षेत्र कुरुक्षेत्र न्यायालय होगा।
स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक सत्यशोधक फाउंडेशन, 912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र हरियाणा

अनुक्रम

संपादकीय	संतन को कहा सीकरी सों काम /3
कहानी	टेकचंद -दंगल / 5
आलेख	आशा मिश्रा 'मुक्ता' - इक्कीसवीं सदी की स्त्री:भारतीयता की पोषक या विनाशक?/45
कविताएं	नरेंद्र बाल्मीकि /51 , पवन धनौरी /52
साक्षात्कार	राजकिशन नैन से अशोक बैरागी की बातचीत कला किसी की बपौती नहीं है / 53
संस्मरण	वी. बी. अब्रोल - एक असली इंसान की कहानी /66
लोक आलोक	मनजीत सिंह - लामणी /73
वक्तव्य	सुभाष चंद्र - वर्तमान के झरोखे से कबीर / 75
हरियाणवी साहित्य	मंगत राम शास्त्री / 79, राजेंद्र रेढू / 80
गतिविधियां	सावित्रीबाई फुले, शहीद भगत सिंह व डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचारों की प्रासंगिकता / 81
	स्वतंत्रता आंदोलन और हिन्दी साहित्य /83

संतन को कहा सीकरी सों काम

संतन को कहा सीकरी सों काम।
आवत जात पनहिया टूटी बिसरि गयो हरि नाम।
जाको मुख देखे दुख लागे ताको करन करी परनाम।
कुम्भनदास लाल गिरिधर बिन यह सब झूठो धाम।

- कुम्भनदास

सत्ता-शासन मनुष्यता-निर्माण की उपेक्षा करके अपनी निरंतरता को प्राथमिकता प्रदान करने लगें और मनुष्यता निर्माण के तमाम क्षेत्रों को नष्ट-भ्रष्ट करने लगें तो साहित्यकारों को मध्यकालीन कवि कुंभनदास से सीख लेने की जरूरत है।

सत्ता की निकटता का एक अनुभव अमीर खुसरो का है जो दस से अधिक राजाओं के दरबारों में रहे। अपनी प्रतिभा और वफादारी से उनका विश्वास भी अर्जित किया, पुरस्कार और सम्मान भी पाया। उन्होंने अपने बेटे ग्यास को तीन नसीहतें दी। तीसरी नसीहत यह थी कि "अपनी शायरी का कोई भी हिस्सा शाहों की खुशामद में बरबाद मत करना, जैसे कि मैने किया। मैं चाहता हूं कि तू हिन्द के आम लोगों में घुल मिलकर उनकी रूहों की आवाज सुन और फिर उस आवाज को अपनी शायरी की रूह बना ले।"

मनुष्य के लंबे संघर्षों से अर्जित बुद्धि, विवेक, मानवीय मूल्यों की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धियों पर शासन-सत्ताएं पर प्रहार कर रही हों तो साहित्यकार की कलम पर और जिम्मेदारी आ जाती है।

शैक्षिक संस्थानों में बच्चों और युवाओं की योग्यता व क्षमता की पहचान की जाती है। उन्हें अपनी योग्यता का विकास करने के लिए अवसर प्रदान किए जाते हैं। लेकिन ये केन्द्र आज कई मामलों में या तो निशाना बनाए गए हैं या फिर उन्हें उपेक्षित किया गया है। शिक्षा के सरकारी संस्थान पूरी तरह से अपने मार्ग से भटका दिए गए हैं। शिक्षा की बुनियाद

प्राथमिक पाठशालाएं आवश्यक सुविधाओं और अध्यापकों की कमी से जूझ रही हैं। अध्यापकों को अपने मूल कार्य से भटकाने के लिए गैर-शैक्षणिक कार्यों का अंबार लगा दिया गया है। पाठ्य पुस्तकों से विचारशीलता को बढ़ावा देने वाली विषय-वस्तु को चुन-चुन कर निकाल दिया जा रहा है और भावी पीढ़ियों की रचनाशीलता पर कुठाराघात किया जा रहा है।

उच्च शिक्षा केन्द्रों में दी जा रही शिक्षा की अनुपयोगी साबित हो रही है और युवा निराशा और अवसाद का शिकार हो रहे हैं। निजी क्षेत्र में आई मंदी और छंटनी की खबरें अब ऊंचे पैकेजों के लालच को भी फीका बना रही हैं। निजी कंपनियों में कार्यरत युवा दिन-रात कड़ी मेहनत करने के बावजूद अमन-चैन से वंचित हैं। अधिकतर युवाओं के लिए पलायन-विस्थापन नियति बन गई है। अमन-चैन, धैर्य, सुरक्षा और शांति ही वह चीज है, जिससे मनुष्य रचनात्मक कामों की ओर प्रवृत्त होता है।

विकास की नीतियों ने चंद लोगों को लाभ पहुंचाया है जिससे विषमता की खाई बढ़ रही है। प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों पर कुछ लोगों का आधिपत्य हो रहा है। संविधान में किये गए सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय के वायदे से लोग वंचित हो रहे हैं। चहुंतरफा असुरक्षा के परिवेश में अधिकांश लोगो का अपने पुरुषार्थ पर भरोसा न होकर पाखंडी-बाबाओं की ठगी का शिकार हो रहे हैं।

निराशाओं से भरी इस तस्वीर के प्रति समाज में आक्रोश भी है और वे बदलाव चाहते हैं। वे सड़कों पर आंदोलनों के जरिये लगातार प्रतिरोध कर रहे हैं। किसानों, मजदूरों, कामगारों, दलितों, महिलाओं, आदिवासियों के आंदोलनों ही आशा जगा रहे हैं। परिवर्तनकामी आकांक्षाओं की आवाज प्रखरता से अभिव्यक्त करके ही साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में कार्यरत कलाकार अपने सृजन की सामाजिक प्रासंगिकता की तलाश कर पायेंगे। अपनी रचनाओं और रचनात्मक गतिविधियों के जरिये इस मुश्किल वक्त में जो साहित्यकार व संस्कृतिकर्मी सत्ता-केंद्रों से दूर बदलावकारी मुहिम के साथ जुड़कर मनुष्य निर्माण की परियोजना के उपक्रम का हिस्सा हैं उनको देसहरियाणा टीम का सलाम।

देस हरियाणा के इस अंक में आलेख, साक्षात्कार, संस्मरण, कविताओं और लोकधारा के साथ टेकचंद की 'दंगल' कहानी विशेष तौर पर आपको पसंद आयेगी।

प्रोफेसर सुभाष सैनी
हिंदी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

दंगल

टेकचंद

बात चौधरियों के गांव बलरामपुर की है। आप किस्सा भी कह सकते हैं। जिसके भीतरले में जाकर लगे उसके लिए दर्द भरी दास्तान और जो भीतरले से सुने पढ़े उसके लिए रोमांचक किस्सा। गांव की बातों यादों का इतिहास भी कह सकते हैं। यूं तो गांव खासा बड़ा है। बारह जात यहां कई पीढ़ियों से रह रही हैं। पीढ़ियों के व्यवहार और परंपरा को मूल्य मानकर खूब धर्म से रहते हैं लोग।

हर गांव की तरह यहां भी पंचायत है। लेकिन इस गांव की एक और खासियत है। इस गांव में बारह गांव की पंचायत की प्रधानी भी है। गोत्र और खाप की प्रधानी के कारण रोहताश चौधरी का लोग सम्मान करते हैं, जैसे और भी पुराने समय में लोग राजाओं नवाबों का सम्मान करते थे। और देश की आजादी के बाद भी राजा अपने आप को राजा जनता को प्रजा समझते हुए सम्मान पा रहे हैं।

उसी तरह रोहताश प्रधान की चौधराहट का दबदबा था।

देश को आजाद हुए पंद्रह एक साल ही हुए थे। लोग अब भी खेती किसानी के भरोसे थे। और खेती किसानी राम जी के भरोसे। एक राम जी वो जो कृपा करे दूसरा राम जी वो जो बरसे। यूं सरकार बहुत कुछ नहीं कर पा रही थी। यह सरकार भी सरकार ही साबित हुई। हमारी सरकार जैसी कोई बात नहीं थी इसमें। लोग अक्सर कहते भी-

"खेती का तो नाश कर दिया इस सरकार नै... शहरां नै तो बसावै ओर गांम कतई उजाड़ दिये..."

"हां भाई कहवै तो एकदम ठीक है कर तो दी एकदम बिरानमाट्टी"

"अरै शहर बसाण लग रहे हैं जभी तै गांम के गांम खाली हो लिए हैं..."

“यो पंडित नेहरू बस मशीन फैक्ट्री नै ही तरक्की समझ रहया है... खेती करी हो तो किसान का दर्द समझै... शहर मैं तो धोवण पोंछण खात्तर भी मीठा पाणी और गांम मैं टूबैल ना लगवा सकै... बस राम जी का सहारा... बरस गया तो फसल होगी ना तो रेह रेह माट्टी”

“यो रोहताश प्रधान कहवै था के नहर आवेगी...”

पूरे बलराम पुर गांव और बारहे (गांव का क्षेत्र बारहा) में रोहताश प्रधान का दबदबा था। वही सबके झगड़ों विवादों का न्याय भी करता था। वह जो कह देता वही न्याय मान लिया जाता-

“पहला हक और उछछल छोटे भाई की बणैं सै तो पंचों कोणे वाला खेत छोटे भाई का” रौबदार व्यक्तित्व के साथ रोहताश कहता तो सारी पंचायत की राय वही हो जाती। सब उसके सुझावों को सिर माथे पर धरते। सफेद कुर्ते पजामे में बलिष्ठ रोहताश के साथ सदैव दो तीन लठैत भी रहते थे। उसका कुनबा भी काफी बड़ा और तगड़ा था। इस गांव में छोटी बड़ी जोत के किसान रहते थे। बदलू सिंह भी इसी गांव का मध्यम जोत का एक मेहनती किसान था।

बदलू सिंह के चार बेटे थे। इन चारों में से सबसे बड़े सूरत सिंह उर्फ सुरते का यह किस्सा है। और उसके बाद का हिस्सा है। जो इतना सच था कि किस्सा बन गया। मिसाल बन गया।

सूरत सिंह उर्फ सुरते अपने पिता की तरह मेहनती और कमेरा था। पिता को उस पर खूब विश्वास और गर्व था। इंसान के भीतर विश्वास और गर्व एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। और घमंड उस सिक्के की खनक। यूं बदलू सिंह बड़े खनकदार ढंग से कहता था-

“सुरते तो मेरा सब तै लायक बेट्टा सै... सूरते नै तो ऐसा काम खेती संभाल लिये के छोटे भाइयां और मन्ने आराम ही आराम... सुरते बेट्टा नै देख कै तो कालजे मैं सीलक हो ज्यावै...” इत्यादि और बुदबुदाते हुए हजारों लाखों दुआएं।

वास्तव में सूरते ही खेती संभाले हुए था। जबकि तीनों छोटे भाई खेती किसानी पर औसत ध्यान करते थे। छोटे वाले की पैदाइश में बदलू सिंह की घरवाली मर चुकी थी। इसलिए गांव वाले इस घर को रंडुओं, रांड्यों का घर भी कहते थे।

इसी कारण उन्नीस का होते-होते बदलू सिंह ने सूरत सिंह का ब्याह भी कर दिया। बहू भी खूब सुथरी, कमेरी और जुझारू आई। नाम बिमला।

“मेरी तो साध पूरी होगी इसी जोट मिली छोरे और बहू की जणैं भोला-भोली चले आवै हैं... इनकी मां होती तो कितणी राज्जी होवती...” बदलू सिंह अक्सर कहता। नई लाईन उम्मीदों के अनुरूप बहू ने घर को संभाल लिया तो सुरते ने खेती में जान डाल दी।

बदलू सिंह के दिन फिरने लगे। छोटे लड़कों का खानपान बेहतर हुआ तो वह भी गाभरु (गबरु जवान) होने लगे। मस्कें भीगने लगीं। देह उमंगने लगीं।

पांच छः साल बीते। सुरते जिम्मेदार, गंभीर और संपन्न हुआ। बदलू सिंह का मान सम्मान बढ़ा। परिवार उन्नत हुआ। दो-तीन खूड़ (खेत) और बढ़ा लिए। इस दौरान सूरत सिंह के दो बेटे हुए।

मां बाप का संयोजन। सुंदर और सेहतमंद।

सूरत सिंह के छोटे भाई हवा सिंह का ब्याह भी कर दिया गया। छोटे भाई सूरत सिंह और उसकी पत्नी का खूब सम्मान करते थे। सूरत और बिमला के बूते घर खेत डंगर ढोर सब पल बढ़ रहे थे। लेकिन और दो छोटे भाई काम कम करते शिकार और पंच पंचायतों में ज्यादा रहते थे। फिर भी बदलू सिंह के दिन सुख शांति से गुजर रहे थे कि अचानक, काली रात घिर आई।

रात को खेत में पानी देते हुए सूरत सिंह को किसी कीड़े कांटे या सांप ने काट लिया। चक्कर आ गया। पास के खेत वालों को आवाज दी। खेत से घर लाए। बेहोश। बिमला और बदलू पर जैसे वज्रपात हो गया। बिमला भहराकर गिर पड़ी। जैसे खड़ी फसल को पाला मार गया हो। बदलू सिंह, जैसे तेज आंधी ओलों से फसल बर्बाद हो गई हो। घर पडौस गांव इकट्ठा हो गया। उन दिनों एक का दुख गांव भर का साझा हुआ करता था। पास के गांव से वैद्य, हकीम, झाड़-फूंक वाले बुलाकर सब जतन किए गए।

बदलू सिंह का बगड़ (आंगन) गली लोगों से भरे हुए थे। वहीं आंगन में सूरत सिंह को एक खाट पर लिटाया गया था।

वैद्य, हकीम, भगत, सयाने (तांत्रिक)भी अपने-अपने ढंग से कार्यवाही कर रहे थे। एक ने नाक में दवा डाली दूसरे ने पूरी देह पर लेप किया।

तीसरे ने झाड़ फूंक कर मंत्र पढ़े और जख्म से जहर चूसा लेकिन खुद गश खा गया। लोग आते रहे। विधियां बताते, करते करवाते रहे। फिर कोई और जतन।

'देह को गाय के गोबर में दबा दो और नाक से दवा दो' उपाय किया गया। पास पड़ोस की गायों का गोबर इकट्ठा कर उसका ढेर बनाया गया। उसमें सूरत सिंह की देह को दबा दिया गया। केवल चेहरा बाहर। पहले तो इक्का-दुक्का सांस चलने से गोबर में कंपन होता रहा। लालटेन, ढिबरी और चांद की रोशनी में स्पष्ट अस्पष्ट दिखता रहा।

बिमला बार-बार बेहोश। बदलू सिंह सदमे में पोतों को साथ में लिए ज़मीन पर बैठा एड़ियां रगड़ रहा था। कभी रो पड़ता कभी बड़बड़ा पड़ता। लोग बाग, छोटे भाई भागदौड़ कर रहे थे। कच्ची पक्की छत, दीवारों पर हर उम्र के लोग जमे हुए थे। रात के तीसरे पहर तक सबने देखा कि गोबर के ढेर में से झांक रही सूरत सिंह की गोरी सूरत काली पड़ने लगी।

गोबर का ढेर ऊपर उठने लगा। सूर्योदय होते होते सूरत सिंह के जीवन का सूर्यास्त हो गया। बदलू सिंह के जीवन में अंधकार छा गया। सबसे ज्यादा घुप्प और क्रूर अंधेरा बिमला के जीवन में हुआ। अभी तो कायदे से जीवन का सूरज चमका भी नहीं था, कि पूर्ण सूर्यग्रहण। हमेशा के लिए सूर्यास्त। फूल से बच्चे। पहाड़ सा जीवन। राह कंटक भरी। गांव भर सदमे में था। गोबर के ढेर से सूरत सिंह की देह को निकाला तो वह बेहद फूली हुई काली लाश में तब्दील हो चुकी थी। मनुष्य और जानवर का भेद खत्म। जैसे कोई विचित्र प्राणी। अंतिम संस्कार हुआ। तेरहवीं तक घर कुनबे से इनका खाना रोटी आते रहे। चूल्हा न जला। तेरहवीं के दिन बदलू सिंह को चक्कर आया। अचेत हो गया। ऐसा अचेत कि चेतना लौटी ही नहीं। चिता पर जाकर भी।

बिमला पगला सी गई। बदलू सिंह बच्चों को गोद में, कंधों पर उठाये फिरता था। और बिमला को सिर के ताज और पगड़ी की तरह सम्मान स्नेह और पिता जैसी देखरेख में रखता था।

अब सूरत सिंह का छोटा भाई हवा सिंह जो तीन वर्ष की एक बेटी का पिता भी था, वह घर का मुखिया घोषित हुआ। मुखिया मायने मालिक भी। दोनों छोटे अभी चौदह-सोलह साल के थे। देह से जवान दिमाग से अबोध ही थे।

बदलू सिंह की तेरहवीं के दिन पगड़ी की रस्म हुई। पगड़ी हवा सिंह को बंधनी तय हुई। हवा सिंह को रोहताश प्रधान का वरदहस्त था। जोरदार शक्ति प्रदर्शन हुआ।

पगड़ी बांधकर परिवार के मुखिया को मान्यता मिलती है। दूर पास के रिश्तेदार पगड़ी साथ लेकर आते हैं। भरी सभा पंचायत में आसन पर बिठाकर नए मुखिया को पगड़ी बांधी जाती है। भोज भी होता है। यहां बदलू सिंह के घर के साथ ही काफी बड़ा चौक था। वहीं दरियां बिछ गईं। शामियाने तन गए। गांव भर जमा हो गया। रिश्तेदार भी इकट्ठा हो गए। सूरत सिंह से छोटा हवा सिंह मुखिया बना बैठा था। बिमला भी छत से देख रही थी। कि अब हवा सिंह घर का मालिक।

जिसको पगड़ी बंधेगी। यह जितना स्पष्ट था उतना ही यह विवादास्पद हुआ करता था कि पहले पगड़ी कौन बांधेगा ? लड़ाईयां तक हो जाती हैं ऐसे में। यहां भी हुई मगर समाधान निकला कि पहले फूफा फिर बाकी रिश्तेदार। जैसे राजा की ताजपोशी हुई हो। हवा सिंह गर्वोन्मत्त था। घर खेत की हिस्सेदारी भी तय हो गई। चारों तरफ खंडवे पगड़ियां चमक रहे थे। उनके तुर्रे फड़फड़ा रहे थे। लग रहा था खंडवों का ही मेला है यह। हवा सिंह को पटड़े पर बिठाकर पगड़ी बांधी जाने लगी। एक के बाद एक रिश्तेदारों ने सफेद पगड़ी उसको बांधी। जय जयकारा गूंज उठा। हवा सिंह परिवार का मुखिया। परिवार का चौधरी और मालिक बन गया।

जैसे कोई अलौकिक अदृश्य शक्ति आ गई उसमें। कुछ ही देर में उसके चेहरे और आंखों में लाली तैर गई। चेहरे पर अहंकार की चमक सामने वाले को तौलती आंखें। अकड़ में गर्दन तन गई। ठुड्डी उठकर जैसे आसमान छूने को हो गई। इसी भाव मुद्रा तेवर और गुरुर से आंखों में लाल लाल डोरे लिए उसने बिमला को निगाह भरकर देखा। जो आंखें बिमला को देखने की सोच भी नहीं सकती थीं वह उसे जी भर कर नजर भर कर देख निहार रही थीं। नजरें मिलीं तो परकोटे पर बैठी बिमला के बदन में सिहरन सी दौड़ गई।

मुखिया जो मुख से निकाल दे। चौधरी चौधराहट के लिए, पगड़ी की शान के लिए जान ले भी ले और जान दे भी दे। समाज का खुला समर्थन।

बिमला के भाई और पिता भी हवा सिंह को पगड़ी बांध चुके थे। मायने वह भी अब इस चौधरी का फैसला मानने की सहमति दे चुके थे। रोहताश चौधरी ने भी अपने दलबल सहित हवा सिंह का स्वागत सत्कार किया। रोहताश का खास महत्व था। रोहताश ने उसे माला पहनाई तो बारह गांवों के प्रधान की जय जयकार हुई। कुछ क्षणों बाद भीड़ को शांत करने के लिए रोहताश ने हवा में हाथ उठाया तो सब शांत। लगा कि कोई खास बात कहने वाला है। सबका ध्यान उसकी भारी मूछों के नीचे थिरक रहे लाल होंठों पर था।

"सारी खाप और पंचायत नै हाथ जोड़ कै राम-राम !"

सबने राम-राम की। वह फिर बोला-

"तो भाइयों ! अब हवा सिंह होया इस परिवार का मुखिया, और कुणबे का चौधरी...!" वह रुका। सबको देखा। फिर बोला-

"तो इस भरी सभा मैं पंच परमेश्वर का नेम धरम उठा कै मैं यो कहणा चाहू हूं! बल्कि मेरी सलाह है कि सूरत के बालकां की भी अगत संमारी जावै और उन पर हवा सिंह की चाद्दर ओढ़ा दी जावै!"

वह जल्दी से कह गया। खलबली सी मच गई। बिमला के परिवार को तैश आ गया। बिमला ने भी सुना। परकोटे तक आवाज़ चली गई। इन दोनों के इरादे तो पहले ही उसे महसूस हो गए थे। उसके बदन में झुरझुरी दौड़ गई। सूरत सिंह की रौबीली सूरत नम आंखों में तैर गई। दोनों बच्चों को देखा, जो अन्य रिश्तेदार बच्चों के साथ चौबारे में खेल कूद कर रहे थे।

मगर अब न सूरत जीवित था न कोई और सूरत बाकी थी। उसे गांव भर की वह सब औरतें याद हो आईं जिनको जेठ, देवर की चादर ओढा दी गई थी या चूड़ी पहना दी गई थी। ऐसे-ऐसे तर्क देते हुए कि-

"ऐ बावली मरद तो धोखे का भी चोखा!"

“बे मर्द औरत को तो दिन काटणे को आवै और रात निगलने को आवै है... और दुनिया...? दुनिया तो हर बखत झपटणे नोचणे नै तैयार रहवै ही है...”

कोई यह कहती-

“मरद चाहे फूंस का होवै उसकी पहाड़ जैसी ओट होवै है...!”

“ऐ बिना मरद की औरत नै तो हवा भी खावण आवै...”

“ना ना ना औरत बेशक मरद तै मज़बूत होवै है पर मरद तै मरद होवै है! मरद का साथ सहारा तो औरत नै चहिए ही चहिए...”

“और बावली थोड़े दिनां की बात... ये बालक ऊपर नै होये फेर किस चीज की फिकर ? हमने पता है उम्र ही कितणी हुई है...? के ना चहिए ? पर के करैं इतणा ही रंग चाव था किस्मत मैं... इब ठंडा पाणी गेर अर कर कालजे नै सीला...”

“औरत का तो झाड़-झाड़ बैरी होवै है...”

ऐसी तमाम तरह की बातें कहकर कितनी ही औरतों को तो छोटी बहन तक की सौतन बना दिया गया। मगर फिर जो नरक काटा।

अपने बालकों की भलाई के लिए उन्होंने जेठ देवर की चूड़ी तो पहन ली। चादर तो ओढ़ ली। मगर खेत ज़मीन नए पति के द्वारा कब्जाते ही उन औरतों की हालत जानवरों से भी बदतर हो गई।

बालक भूखों मरते मंगते हो गए। कई जगह मरे भी पाए गए मां और बच्चे।

अपने फूल से, राजकुमारों जैसे बच्चों को देखा। बड़ा छः साल का छोटा चार का। दोनों भाई रंगीन कुर्ते पजामे में सब बच्चों से अलग ही लग रहे थे।

दूसरा भविष्य दृश्य खुद का और बच्चों का।

वो जहां तीनों जन खेतों में बिवाई फटे पैरों, पपडाए होंठों और भिखारियों जैसी उतरन पहने डंगरों के साथ डंगर से ही कसाला कर रहे थे। वह पूरे गुस्से में अपनी जगह से उठी। देखा कि चौक में तो घमासान मचा हुआ है। उसके परिवार जन हवा सिंह और अन्य कुनबे वालों के साथ गुस्से में बोल रहे थे। पगडियों के तुर्रे लहरा रहे थे। कभी आगे झुकते कभी पीछे हटते। मानो इंसान नहीं पगड़ियां ही पगड़ियों से बहस कर रही हों। जैसे चेहरों का कोई महत्व नहीं। कोई भूमिका हो ही नहीं। जो गर्व, गुरूर, तैश, जलाल है जोर है, पगड़ी का ही है।

“अरै जब एक बार उस बेचारी लुगाई तै तो पूछ लो...”

“लुगाइयां तै पहला बूझी है कि जो आज बुझेंगे ? न्यू ही होता आया है और यो ही होवैगा!”

“जो पहलां ना होया वो के कदे ना होवेगा ? अपणा राज है कोई अंग्रेजां या राजा बादशाह का राज ना है!”

सब खामोश। यह बुलंद और बेख़ौफ़ आवाज़ बिमला के पहलवान भाई की थी। जो आसपास के बीस तीस गांवों का नामी पहलवान था।

पचासों गांवों में नाम। सबसे ज्यादा दंगल लड़ा और जीता हुआ पहलवान। बिमला उससे कई साल छोटी थी। फिर एक और छोटा भाई। बाप कुछ बोल ही नहीं पा रहा था। वह तो बेटी दामाद के ग़म में बुत हो चुका था। मगर पहलवान बाप के मन को समझ रहा था।

‘पहलवान बोल्या!!’

‘हनुमान का लंगोटा थाम राखा है जगदीश पहलवान नै!’

बात आग की तरह फैल गई। लोगां उमड़ पड़े पहलवान की झलक देखने को। हजारों निगाहें पहलवान पर टिक गईं रोहताश चौधरी को चुनौती महसूस हुई।

“लुगाईयाँ तै बूझण का रिवाज़ ना है म्हारे गाम मैं पहलवान! बल्कि मेरे पूरे बारहे मैं ही ना है! थारे गांम मैं हो तै वहां ही राख म्हारे यहां मत चला! म्हारे बारहे का चलण मत बिगाड़! म्हारी यो ही रीत है और यो ही रिवाज़ है!”

रोहताश अपने पद और प्रतिष्ठा को बीच में ले आया तो सारी पंचायत और उसके लठैत भी हां में हां मिलाने लगे।

“हां! हां! एकदम ठीक प्रधान जी” रोहताश चौधरी का साथ पाकर हवा सिंह हवा हो रहा था। रोहताश के लठैत घुड़की देकर तैयार। पहलवान खड़ा रहा। अविचल। अडिग। निडर। साथ आया अखाड़ा भी एकदम तैयार। सारे पहलवान साथ आए थे। पूरा गांव और इस कुनबे के रिश्तेदार मौजूद थे। आधा गांव छतों, चौबारों, छज्जों, अटारियों पर। बच्चों औरतों के रूप में कुतूहल से देख रहा था। बिमला भी औरतों से घिरी और दोनों बालकों की निगरानी करती हुई इस दृश्य को देख रही थी। पति का दुख। भाइयों, परिवार का आत्मविश्वास, भरोसा। और इन चौधरियों के घृणित इरादों से घिरी हुई। एक ऐसी दुनिया जिसकी कल्पना थोड़े दिनों पहले की ही नहीं थी।

अगाध विश्वास और भरोसे के साथ बिमला अपने भाई को निहार रही थी। आंखें नम थीं। चेहरे पर दृढ़ता। भाई से नजरें मिलीं। जबड़े भींचकर बहुत सूक्ष्म ढंग से पंचायत के फैसले पर इनकार में गर्दन हिला दी। पहलवान की पैनी नज़र ने बहन की आंखों का पानी पढ़ लिया। हालांकि पहले भी वह बतला चुका था बहन से।

“तू के चाहवै है ? औरतों से घिरी बिमला से उसने जाकर पूछा था। वह रूंआसी सी छोटे बेटे को रोटी खिला रही थी। बड़ा खुद खा रहा था। भीड़ को टुकुर-टुकुर ताक रहा था।

बिमला अपनी हिचकियों पर काबू पाने की कोशिश में थी। उस मुसाफिर की तरह जो बीच सफ़र लूट लिया गया हो। मगर रोना छोड़ कर जो बचा है उसे लेकर सुरक्षित सफ़र पूरा कर पाए। बिमला बोली-

"कितणे दिन तक चलै है ये चाद्दर और चूड़ी ? जिस दिन अगला घर खेत का मालिक बण जावै थोड़े दिनां मैं बालकां की दुर्गत बण ज्या... और फिर मां बालक किते कुंए जोहड़ मैं मरे पड़े मिलै... पंचायत का के दीन धरम ? इसे इसे प्रधानां नै थोड़ा लालच दे कै काले नै धोला कहवा लो... ये तो रात नै दिन बता दे बस अंटी गरम कर दो इनकी...!"

औरतें बिमला का मुंह ताक रही थीं। जैसे उनके मन की बात जो सात जन्मों से सात तालों भीतर क़ैद थी, बिमला ने उन्हें बाहर निकाल दिया हो। कईयों की आंखें भर आईं।

हिचकियों पर काबू पाकर बिमला निर्णायक स्वर में बोली-

"अरे भाई मेरे ! तू तो जागती आंखों देख ही रहया है किस गांव का कुआं जोहड़ सुच्चा रहया है ? बहण भी बहण नै बरदाश ना करती। और मरद ? मरद की तो अपणी चौधर बणी रहवै लुगाई नै चाहे जुए मैं हार जावै चाहे जींवती नै आग में झोंक दें... पर मरद का रसूख कम नहीं होणा चाहिए...!"

सुनकर पहलवान विचलित हो गया था। बिमला भाई की स्थिति और पंचायत का तकाजा जान रही थी। मन कड़ा करके दो टूक बोली-

"मैं तो बस अपणे बालकां नै पालना चाहूं हूं... बस पांच सात साल की ही तो बात है, ये बालक थोड़े ऊपर नै हो ज्यां अपणे खेत-क्यार संभाल ले, चाचा ताऊ किसके होए हैं आज तक ? और कोई चाद्दर लत्ता ओढ़ावेगा तो मेरे तै थोड़ी ? इन खेतां कै इन हवेली चौबारां नै ओढावेगा! पीच्छै तो बालकां की बिरान माट्टी हो जावै है, देख ले हांड कै चारूं तरफ..." कहते कहते उसका आवेश रूदन में बदल गया।

"इनका बाप रहता तो राजकुमारां की तरियां पालता इन नै... मैं उस तरियां ना तै थोड़ा बहोत तै वैसा पाल दूं किसी तरियां ब्याह सगा दूं तो इनके बाप नै मुंह दिखावण लायक हो जाऊंगी...!"

कहते कहते हैं वह रो पड़ी। पहलवान की भी आंखें भर आई। दोनों भाई-बहन रोए जाए। बालक कभी मामा को देखे कभी मां को। छोटे वाला रो पड़ा। तब बहन भाई अपने आपे से बाहर आए। बिमला थमी और बच्चे को कलेजे से लगा लिया। हिचकी लेकर बोली-

"भाई रे! मेरे बालक बणे रहवै मन्नैं किसी की चाद्दर चूड़ी ना चहिए!"

पहलवान ने आंखें पौंछी। उसके बच्चों का सिर पुचकारा। दृढ़ता पूर्वक बोला-

"फिकर मत कर बेबे! मैं हूं ना!"

कहकर वह खम ठोंकता सा वापस मुड़ा। मौजूद औरतें हैरानी से देख रही थीं। जो आज तक नहीं देखा उसकी उम्मीद बन रही थी। जो आज तक न हुआ मगर मन की चाह थी कि हो, उसके आसार बन रहे थे। जैसे बरसने को बादल घुमड़ रहे थे। मेघ गर्जन सी सांसे छोड़ता पहलवान पंचायत की ओर बढ़ रहा था। उनमें से कईयों को यह दिलासा जैसे अपने लिए लगी। शब्द नहीं भरोसा था पहलवान की बात में। जैसे जीवन रेखा।

पहलवान पंचायत के बीच आकर लोहा लाट की तरह खड़ा हो गया। पूरे गांव की निगाहें उस पर टिक गईं। बिमला भी परकोटे से निहार रही थी। अन्य औरतें भी देख रही थीं। ख़ुद पहलवान का पिता और भाई बंधु भी निर्णायक स्थिति के लिए तैयार। पहलवान ने हाथ जोड़ लिए। विशालकाय देह को थोड़ा मोड़ा और बोला-

"गाम राम और पंचैत तै हाथ जोड़ कै अरज है के मेरी बहाण गुजारा कर लेगी अकेली, उसनै किसी की चूड़ी और चादर की जरूरत ना है..."

"रै अपणा मुंह बंद कर पहलवान! एकदम चुप्प पड़ा रह!"

रोहताश चौधरी पूरी ताकत से दहाड़ा। जैसे उसकी चौधराहट का ताज ही गिरा दिया हो पहलवान ने। पूरा गांव हैरान। सुन्न। चारों तरफ का जायजा सा लेकर पूरे ताव में लाल चेहरा किए बारह गांव की खाप का प्रधान रोहताश चौधरी बोला-

"अकेली जवान लुगाई मरद माणस के बिना के चाल पावेगी? और ये समाज के रिवाज हैं, तेरी समझ में कोनी आवेंगे! खा खा कै बुद्धि मोटी कर राखी सै! रिश्तेदार है चाह पाणी पी और निकल ले! हमनै म्हारा गाम म्हारा समाज म्हारे ढंग तै चलाणा आवै है... ये म्हारे पुरखां के बणाए रिवाज हैं इन नै बचाण खातर हम खून भी बहा सकैं हैं !"

रोहताश ने घोषणा की तो उसके साथियों ने भी खम सी ठोंकी। जैसे इशारा मिलते ही टूट पड़ेंगे। पहलवान ने सिंहावलोकन सा किया। चारों तरफ देखा तो पहलवान के साथी भी पंजो पर आ गए।

परकोटे में औरतों से घिरी बैठी बिमला की निगाह सामने की कोठरी में रखे कृषि औजारों पर टिकी हुई थीं। हल की फाल, खुरपियां, फावड़े और कई दरातियां। सबका लोहा बाहर से आ रही धूप में चमक रहा था। अपनी पसंद की सबसे बड़ी भारी दरांती की मूठ को महसूस कर उसकी मुट्ठी खुल बंद हो रही थी। गोद के बच्चे को उसने दरी पर बैठा दिया। उसकी मुख मुद्रा को देखकर साथ की औरतें सहम गईं। एक आध के मुंह से फुसफसाहट सी निकली-

"कैसी लुगाई है ? खून खराबा और मरणा मंजूर पर..."

"चाहे लाश गिर ज्या पर आण ना गिरै..." मगर ये बातें होंठों पर ही रहीं। कानों तक ना पहुंची।

इधर पहलवान की निगाह जा टिकी हवा सिंह पर। जो कहीं से सूरत सिंह की परछाई भी नहीं लग रहा था। हवा सिंह रोहताश चौधरी की हवा के झोंके में था। पहलवान ने आंख भर देखा। तौला। जैसे प्रतिद्वंदी को आंकता हो। पहलवान से नज़र मिली तो हवा सिंह को अपनी पिंडलियों में जकड़न सी महसूस हुई। सिर पर बंधी अनेक पगड़ियों में खिसकाव सा प्रतीत हुआ। अब उसे पगड़ियां बोझ लग रही थीं। वह बगलें झांकने लगा। उसके कुनबे वाले शांत बैठे थे। रोहताश के तेवरों में ढील न देखकर पहलवान ने जोड़े हाथ खोल दिए। आवाज़ में गुर्राहट। नथुनों से तेज सांस की आवाज़ें आने लगीं। गोरा चेहरा लाल से लाल होने लगा। नसें फड़कने लगीं। हड्डियां चटकने लगीं। पहलवान ने चारों तरफ मौजूद जनसैलाब को देखा, जो वह सैंकड़ों बार देख चुका था। सैंकड़ों दंगल जीत चुका था। आज जीवन के सबसे बड़े दंगल के बीचों-बीच वह मुस्तैद खड़ा था। बहन का मान सम्मान ही पुरस्कार था, जो मरकर भी बचाना था। बिमला भी तत्पर थी। कुछ कदम दूर दरांती थी। कुछ सीढ़ियों नीचे हवा सिंह। पहलवान का शरीर आवेश में फूलने लगा। पारखी देख रहे थे कि अच्छे और सच्चे पहलवान का शरीर दंगल के समय ड्योढ़ा हो जाता है। खुलकर जैसे मोर ने अपने पंख फैला दिए हों। पहलवान ने रोहताश की बात काटकर तेज आवाज में सबको सुना कर कहा-

“ये रीत्ति रिवाज माणसां नै बणाए हैं... माणस तै बड़े ना हैं...” जब माणस ना रहवेंगे तो ये रीत्ति रिवाज किसके ऊपर चलाओगे ? माणस की भलाई खात्तर रीत्ति रिवाज बदलने भी पड़ेंगे और छोड़ने भी पड़ेंगे और मेरी बहाण अपणे घर मैं अपणे बालकां के साथ रह लेगी... उसनै किसी के लत्ते-कपड़े, चादर-चूड़ी की जरूरत ना है!”

घोषणा कर दी पहलवान ने। पंचायत अवाक। लोग हैरान। कईयों को शांति मिली कि रोहताश को कोई सवा सेर मिला।

“रै बावली बूंच उसका कोई तै रखवाल हो! कोई मरद माणस!” रोहताश दहाड़ा। और हवा सिंह की तरफ देखा। मगर हवा सिंह तो जैसे सदमे में था।

“मैं हूं रखवाला!”

पहलवान और तेज दहाड़ा।

“कब तक रहवेगा रखवाल” ?

रोहतास का तार्किक व्यंग्य।

“सदा रहूंगा! जब तक मेरी देही मैं जान है!”

पहलवान के क्रोध में भाव भरा था।

“सदा कौण रहया है आज तक ? रिश्तेदार सांझ आया तड़कै चाल्या”

रोहताश ने कहा।

"जब तक मेरी बहण और उसकी धरती पर किसी की भी आंख है मैं रहूंगा! यहीं रहूंगा!" पहलवान की भीष्म प्रतिज्ञा। पंचायत डांवाडोल, कि अब तो खून बहेगा। हवा सिंह सूरत सिंह की जिस ज़मीन पर खड़ा था वह पैरों के नीचे से खिसकती-फिसलती जान पड़ी। ताव में आकर अंतिम प्रयास के तौर पर बोला-

"मारो स्साले नै!" उसने अपने कुछ खास लोगों को आदेश दिया।

आसपास के तीसों गांवों का नामी पहलवान देव सा खड़ा हुआ। रोहताश चौधरी जब तक रोकता तब तक उसके और हवा सिंह के कई आदमी पहलवान की तरफ बढ़ गए। हर तरफ खलबली मच गई। यह दंगल अलग था। पहलवान तैयार। पहलवान ने कंधे पर रखी मोटी चादर को बिजली की त्वरा से सिर पर पगड़ी की तरह बांध लिया।

लठैत बढ़े चले आ रहे थे।

सफेद पजामा, आधी बाजू का सफेद कुर्ता, पहलवान ने हाथ झटके। मुट्ठियों को खोला, बंद किया। उधर बिमला मज़बूत हथेलियों कोहनियों से औरतों को परे धकेलती हुई दरांतियों वाली कोठरी में। अपनी मनपसंद भारी दरांती पर तगड़ी पकड़ बनाए बाहर निकली। आंखों में अंगारे। चेहरे से लहू छलक पड़ रहा था।

इधर चार लठैत पहलवान पर झपटे। लाठियां हवा में लहराईं। मगर नीचे नहीं आ पाईं। पहलवान के साथियों ने दो को तो बीच में ही लपक कर धराशाई कर दिया। जितनी तेजी से वह पहलवान की तरफ बढ़ रहे थे पहलवान उनसे दुगनी चौगुनी रफ्तार से उन पर झपटा। वह लोग लाठियों को पर्याप्त पीछे की तरफ नहीं ले जा सके, ताकि पूरी शक्ति संचित कर लाठी में उतार सकें। एक लाठी पहलवान के सिर पर बंधी पगड़ी से छूते हुए फिसल गई। दूसरी कंधे को छूते हुए धरती पर जा लगी। चूंकी पहलवान झुकाई दे गया था। वह दोनों दूसरा वार करने की स्थिति और दूरी पैदा कर पाते तब तक पहलवान के मजबूत हाथों की हथेलियां उनके सीने पर "धप्प" से पड़ीं। उनकी पसलियां चरमरा गईं। 'चट्टाक' की आवाज़ हुई। वे दोनों पीठ के बल धरती पर पड़े बिलबिला रहे थे। लाठी छोड़ उनके हाथ अपना सीना संभाल रहे थे। एक ने पहलवान का जैसे दांव चुरा लिया। उसी की शैली में उछल कर झपटा। पहलवान ने दांव काटा। दो कदम और तेजी से आगे बढ़ाए। बाजू मोड़ी कोहनी तैयार। जो उछला था नीचे आना ही था। कोहनी की नोक पर आकर टिका, और ज़मीन पर दोहरा होकर पड़ा।

अब पहलवान ने हवा सिंह की तरफ रुख़ किया। भीड़ को चीरती हुई बिमला दरांती लिए प्रकट हो गई। खूंखार इरादे लिए वह हवा सिंह को लक्ष्य कर रही थी। पहलवान के घर वालों और साथियों ने हाथों में हाथ थाम कर, गोल घेरा बनाकर पहलवान और बिमला को सुरक्षा चक्र में ले लिया।

रोहतास को लगा कि गई चौधराहट। इज्जत भी खराब। सबने देखा बिमला का पल्लू खिसक गया था। मगर उसे परवाह नहीं थी। पंचायत के लिए यह एक बहुत बड़ा खतरा था।

गांव में खाली पंचायत घर के सामने से भी औरतें सर झुका कर, सम्मान करती हुई निकलती थीं। और यहां तो...।

"लुगाई पंचायत मैं ?"

"उघाड़े सिर ?" पुराने पंच बोले।

"गाम राम के इज्जत रह गई थारी ?"

"शर्म करो!" कई बूढ़े सरपंच खड़े होकर कहने लगे। रोहताश और हवा सिंह को धिक्कारने लगे। परकोटे से औरतें भी घूंघट पल्ले में से बोलीं-

"जब वो नहीं चाहवती तै जरूरी है ठाढ़ (जबरदस्ती) करणी ?"

"के धरती के लालच मैं माणस मारोगे ?"

"थू! है थारी चौधर पै!"

अब रोहताश और हवा सिंह डरे। सिर नीचा। उनके आदमी अगले आदेश को उतावले । मगर अगले आदेश को चौधराहट जाने के डर ने डस लिया।

"बंद करो यो नंगपणा" एक पुराना बूढ़ा प्रधान तड़प कर बोला।

पहलवान और बिमला का सुरक्षा चक्र सिकुड़ता चला गया। अब दोनों भाई बहन की पीठ अपने भाई बंधुओं साथियों की पीठ से सट रही थी। और वह सब हाथ पंजा खोले झपटने की मुद्रा में गांव भर का सामना कर रहे थे। सुरक्षा चक्र पहलवान और बिमला को घर के भीतर बैठक में ले चला। औरतों ने दोनों बच्चों को छिपा सा लिया था। पंचायत बर्खास्त। सब लोग अपने अपने घरों की तरफ। मानों मुर्दा फूंक कर लौट रहे हों। सुरक्षा चक्कर भीतर जाते ही भारी-भरकम दरवाजा बंद। जिस पर मोटी कीलें बाहर की तरफ निकली हुई थीं। विशालकाय बैठक, फिर आंगन और फिर मुख्य कमरे।

पहलवान के साथी बैठक के भारी-भरकम पलंगों चारपाईयों पर। पहलवान बहन और घरवालों सहित भीतर के आंगन में खाट-पीढ़ी, दरी पर। सब कहीं ना कहीं बैठ गए। धीर गंभीर चिंतामग्न।

सांझ हो गई थी सूरत सिंह घर कुनबे की औरतें लड़कियां खाना ले आई थीं। वह सब खाने के लिए बिमला को मना रही थीं। तो बिमला भाई को समझा रही थी-

"रोटी खा ले भाई रे! जो होणा था हो लिया!"

"सब नै खिला दो मैं बाद में खा लूंगा" पहलवान ने कहा।

सभी ने थोड़ा बहुत खाया। ज्यादातर लोग उसी सांझ निकल गए। पहलवान के भाई व पिता रुके ,और अगली सांझ गए। मगर पहलवान नहीं गया। लगा था कि पहलवान ने

पंचायत में बस ताव ताव में बड़ी बात कह दी थी। मगर पहलवान तो रुक ही गया। इस घटना अर्थात तेरहवीं के अगले दिन पहलवान ने चूल्हा जगा लिया। अब घर में बिमला दोनों बच्चे और पहलवान। कई दिनों तक पंचों और हवा सिंह की हिम्मत नहीं हुई कि पंचायत बुलाए। पंद्रह बीस दिन बीत गए। इन दिनों पहलवान बहन के हिस्से आए डंगरों की सानी पानी करता रहा। उनको जोहड़ से नहला लाता। दूध निकालकर बाल्टी भरकर बिमला को थमा देता। उसके बांटे आए खेतों की देखभाल करने लगा। ध्यान रखता कि हवा सिंह मेंड़ न काट ले, टेढ़ी ना कर दे। थोड़े दिनों में ही बरसात के आसार हो गए। पहलवान ने बुआई शुरू कर दी। खेत, ढोर-डंगर, घर संभालने लगे।

बिमला भी संभलने लगी। वह छोटे को गोद में लिए बड़े को गांव के स्कूल छोड़ आती, ले आती।

घर, घेर, खेत, स्कूल सब जगह पहलवान बच्चों के आसपास मंडराता रहता।

एक भारी-भरकम तेल पिलाई लाठी जो उसके कानों तक लंबी थी, वह साथ लिए चलता।

खेत में होता तो कंधे पर। गांव गली में होता तो टिका कर "ठक ठक" करता चलता। लाठी पर पीतल के सिक्के जड़े थे। तांबे के तार मढ़े थे। जैसे भारी सा मुगदर बन गया हो। इस लाठी को लेकर किस्से ही चल पड़े थे।

"पता है यो पहलवान की लाठी कितणी तगड़ी है...?

"हां ! जितणा भी पहलवान घी पीवै है उतणा ही इस लाठी तै पिलावै है"

"एक बार खेत मैं जंगली भैंसे घुस गए थे, पहलवान नै ऐसी लाठी मारी कि भैंसा वहीं पसर गया... आधे घंटे मैं होश आया जब जान बचाकर भागा"

"आच्छा रै...?"

"हां अब तो पहलवान बेशक खेत मैं ना हो, किते सोया हो लाठी नै देख कै डांगर दूर हट जावै हैं...."

"तो ताकत लाठी मैं है कि पहलवान मैं ?"

यूं बच्चों से लेकर बड़ों में पहलवान और उसकी लाठी का भयंकर खौफ जम गया था।

भीतर के कमरों और आंगन में बिमला रहती, बच्चे खेलते कूदते। बाहर बैठक में पहलवान रहता। सनी के एक भारी भरकम पलंग पर लेटता बैठता। उसे सोते तो कम ही लोगों ने देखा था। जरा सा खटका हुआ कि-

"कौण है ?" की हुंकार लगाकर लाठी फटकार देता। गली में निकल आता। कभी छत चौबारे पर दिख जाता। लोगों ने अनेक बार देखा कि पहलवान रात भर जागता रहता। वह

भूत की तरह कहीं भी नजर आ जाता। घर आंगन, छत चौबारे, गली, दीवारें, पेड़ सब जगह पहलवान जिन्न सा प्रकट रहता। बिमला के आसपास के अंधेरों में वह जुगनुओं सा जगमगाता रहता।

एक सुहानी सी सांझ का समय। दशहरे के आसपास की मीठी ठंड। आंगन में जीने के नीचे बने चूल्हे पर बिमला रोटी बना रही थी। वह दोनों बच्चों को गरमा गरम रोटियां बना कर खिला रही थी। वह रोटियों की पपड़ी फाड़ती, खूब सारा नूणी घी (मक्खन) भरती और बीच-बीच में चोभ-चोभकर (डुबो डुबोकर) खिलाती। साथ ही रोटी भी सेंकने लगती। उपलों की आंच में मोटी रोटियां खुद बुद सिंक रही थीं। अन्न भुनने की सोंधी-सोंधी गंध साथ ही मक्खन पिघलने की नमकीन ख़ुशबू आंगन में फैली हुई थी। हरा साग उपलों की आंच पर रंध रहा था। उसमें हरी मिर्च और लहसुन पीस कर डाल दिए गए थे। उसकी खुशबू भूख भड़का रहे थे। मगर पहलवान अभी तक खेतों से लौटा नहीं था। बिमला अपनी और भाई की रोटी एक साथ बनाती थी। दोनों बहन भाई इकट्ठे ही खाते थे। इधर हारी में उपलों की आंच पर दूध भरी कढावणी रखी थी। दूध पककर गाढ़ा हो रहा था। हारी ज़मीन में थोड़ा खोदकर तंदूर जैसे बनाई जाती है। उसमें सुलगते उपलों की धीमी आंच पर मिट्टी का मटकेनुमा खूब अच्छे से पकाया गया बर्तन रखा जाता है। जिसे कढावणी कहते हैं। उस पर मिट्टी का ही ढक्कन होता जिसके बीच में पकड़ने के लिए लट्टू सा होता है और आसपास भाप निकलने के छेद। दूध भुन रहा था, जिसकी खुरचन बच्चे चाव से खाते थे। अब बिमला पूरी तरह बच्चों को खिला रही थी। बड़ा जो आठ साल से ऊपर का हो चला था, खुद खा रहा था। जबकि छोटा पांच छह के बीच में ही था, बिमला उसे फूंक मार- मार कर अपने हाथों से रोटी खिला रही थी। सरसों का साग बालक खाना नहीं चाहता था।

"थोड़ा और खा ले फेर चूरमा" मां लालच दे रही थी।

"ना! ना! मीथा-मीथा चूरमा"

बालक ज़िद कर रहा था।

"ना पहलां साग के साथ खा फेर चूरमा" वह फिर जोर दे रही थी। बिमला उसे लालच दे रही थी कि चूरमे के बहाने कुछ तो साग सब्जी खाए बालक। जिससे शरीर में ताकत आए। पहलवान का आदेश था-

"जितणा दूध और हरा साग खावेंगे उतणा फैदा होवेगा सेहत का"

बिमला पालन कराने में जुटी हुई थी। इतने में मुख्य द्वार की कुंडी खुड़की।

बड़ा लड़का उठा और चूल्हे के पास रखी अपनी डंडेनुमा लाठी उठाई। यह लाठी पहलवान आजकल उसे सिखा रहा है। सख़्त हिदायत है मामा की तरफ से-

"जब भी रात मैं बाहर निकलो, कोई सांकल कुंडी बजावै तो लाठी ले कै जाओ पहलवान रुक्का मार कै नाम बूझो के कोण सै ? फेर किवाड़ खोलो!"

बड़ी अदा और रौब से बालक बैठक में पहुंचा और जोर से बोला-

"कौण है...?

बिमला चूल्हे के पास बैठी उसे लाड़ से निहार रही थी।

"अरै मैं हूं गोलू" स्त्री स्वर

"मैं ? मैं तो बकरी होवै है!" कहकर बालक ने ईंट के खड़ंजे पर लाठी ठोकी।

बाहर से स्त्री स्वर में हंसी आई। हंसकर कहा-

"अरै गोलू मैं हूं तेरी ताई माया... और मैं ताई धन्नों "थोड़े-थोड़े अंतराल से बोलकर दोनों हंसी। यह दोनों पूरे मोहल्ले की जासूस और लगालूतरी मानी जाती हैं। यहां की बात वहां करना सब की खबर रखना। यह अलग बात है कि दोनों अपने बदतमीज बच्चों से अनादर पाती हैं और पियक्कड़ पति से मार खाती हैं"।

ऐसा ही था वह समाज। जिस स्त्री की घर में पूछ व सम्मान नहीं होता था वह घर पड़ोस की अघोषित चौधरण तथा फतवेदार होती थी। घर में टिकाव नहीं और मोहल्ले भर में इसके घर और उसके घर। बच्चे ने कुंडी खोली और भारी-भरकम दरवाजों को भीतर खींचता हुआ बोला-

"ताई राम राम ! ताई राम राम !" दोनों स्त्रियां हंस पड़ीं। एक साथ बोलीं-

"राम राम बेटे तेरी तो दो दो बार राम राम!" कहती हुईं वे दोनों चूल्हे की तरफ बढ़ी। बच्चा लाठी तोलता गली में गया। दूर-दूर तक निगाह मारी कि मामा नजर आ जाए। वापस आकर दरवाजा बंद किया और लाठी यथास्थान रखकर अपनी कांसे की थाली के सामने पालथी मारकर बैठ गया। चूल्हा जीने के नीचे था। जीना खुले आंगन से सीधा छत पर जाता था। उसके एकदम नीचे चूल्हा। जिसके बाद दालान था। फिर कमरे। यह दोनों औरतें लट्ठे की मोटी चादर को लुगड़ी की तरह ओढ़े हुए थीं। भारी दामण कड़ूले और घिसी हुई जूतियां। नाते में दोनों जेठानी लगती थीं।

बिमला ने ही पहले कहा-

"राम-राम बेबे!" दोनों ने राम-राम ली और पीढ़ा मूढ़ी खींचकर चूल्हे के पास आ बैठीं। बिमला पटड़ा लेकर घुटना ऊपर कर कुछ इस प्रकार बैठी कि थाली की रोटी उन दोनों को न दिखाई दे। परंतु वे झांकने की कोशिश में। धन्नो को काली जुबान वाली भी कहा जाता है पूरे मोहल्ले में। नज़र लगा देती है। हाय मार देती है। यह सोचकर बिमला ने मक्खन की कुल्हड़ी (छोटी मटकी) को उसके मिट्टी वाले पके ढक्कन से ढक दिया। वह दोनों बच्चों को दालान में खाट पर बिठा आई।

“दोन्नुं भाई यहां बैठ कै खाओ मैं थारी ताई तै बतला लूं!” बिमला ने स्त्रियों को भी सुनाते हुए कहा कि बुरा ना लग जाए।

समझा कर वह वापस इन दोनों की तरफ लौटी, और बोली-

“हां जीजी माया! बता बहाण धन्नो के डौल? किस बल आणा होया...?

“मां चूरमा!” जब तक माया या धन्नो बोलती छोटे बच्चे ने आवाज लगा दी। बिमला झुंझलाई। वह उठी और हारी पर रखी कढ़ाई से पलिया द्वारा दूध निकालकर कांसी के बेलों (कटोरों) में डालते हुए बोली-

“रुक जाओ दोन्नू भाई ! पहलां दूध पी लो ! मामा आ जावै फेर चूरमा..!”

“मलाई मत ! मलाई मत !” छोटा चिल्लाया।

“मन्नै तो खूब सारी मलाई चहिए !” बड़ा बोला दोनों स्त्रियों से बर्दाश्त नहीं हो रहा था। माया बोली-

“आं हे यो तै वो ही कहावत बणगी के मैं आई थारै अर तू चढ़ बैठी चौबारे !”

“ऐ कहवै तो ठीक है ! इस जली नै तो उकास (अवकाश) ही कोन्या” धन्नो बोली।

“ना बेबे बालकां का तै पहला करणा पड़ै है ! भूखे हैं बालक, बड्डे तो सबर कर सकै हैं !” बिमला अपनी लुगड़ी से हाथ पोंछती हुई वहां पहुंची। बिमला पटड़े पर इन दोनों के पास बैठी। तीनों जनी चूल्हे का ताप महसूस कर पा रही थीं। जो भला लग रहा था। बिमला के बैठते ही उन्होंने सुर बदला-

“ऐ बिमला गीत बाकलियां मैं आ जाइये बेबे !” माया

“हां बिर इब रिवाज़ तो निभाणे पड़ै हैं...” धन्नो ने बात पूरी की। यहां ब्याह शादी से कई दिनों पहले औरतों के गीत शुरू हो जाते हैं। रोज आख़िरी में घर वालों की तरफ से भीगा उबला अनाज गुड़ मिलाकर दिया जाता है। जिसे बाकली कहा जाता है। जिसकी गुंजाइश ठीक हो वह चना मिला सकता है। ज्यादा ही अच्छी हो तो खाली चने की बाकली भी बना सकते हैं।

ऐसे गीत गानों में बिमला जाती नहीं थी। परंतु न्योता पूरे कुनबे से आता था। दोनों को प्यार से निहारकर बोली-

"दूध पियोगी ?”

“थोड़ा-थोड़ा चाल जावेगा” धन्नो बोली।

“थारे दूध मैं पाणी कोन्या होता। खूब मिठास अर भुनाई की खुशबोई” माया बोली।

“मेरा भाई डांगरा की बहोत सेवा करै है” गर्व से कहती हुई बिमला उठी। चूल्हे के बाद जो दालान पड़ता था वहां फट्टे की ताक से पीतल का लोटा और कांसे की तीन

कटोरियां ले आई। कटोरियां वहां बिछी हुई बोरी पर रखी और हारी पर रखी कढ़ावणी से कई पलिया दूध लोटे में डाल लाई।

लोटा वहां रखा और दालान पार कर भीतर वाली कोठरी की दीवार में बनी खिड़की के पल्ले से खोले। यह सोलह अठारह इंच की दीवार में निकली अलमारी सी थी। वहां एक मटके में गुड़ की कई डलियां निकाल लाई। यह सारा काम कुछ ही क्षणों में उसने कर दिया। धन्नो और माया गोपन ईर्ष्यालू भाव से उसकी चुस्ती फुर्ती की कायल हो रही थीं।

अब तीनों जनी पीढ़ों पर आमने सामने बैठी थीं। कांसे की कटोरी में गर्म पका दूध। गुड़ की मिठास। मीठी ठंड और चूल्हे की निंवाई तपन। एक बारगी सब दुख तकलीफ भूल गईं जैसे जीवन इन्हीं क्षणों में है। निश्छल हंसी खुशी से तीनों की आंखों में नमी बढ़ गई थी। बिमला को भाई का आना याद है। इसलिए इनको विदा भी करना चाहती थी। ताकि आराम से भाई और बच्चों के लिए चूरमा बना सके। दूध पीते पीते-पीते धन्नो ने खाट पर बैठे बच्चों को निहारा और कहा ‟बड़ा वाला छोरा तो कती अपणे बाप पै है; वो ही मात्था वे ही होंठ...”

सुनकर बिमला के कलेजे में हूक सी उठी। दूध की घूंट भरी न गई। धंसक लग गई।

दोनों औरतें कनखियों से एक दूसरी को देख रही थीं। जैसे सेंध लगाने में सफल हुई हों। बिमला खांस रही थी। बड़े वाला लड़का भाग कर मटके से पानी भर लाया। दूध पर पानी ?

मगर बालक का मन रखने को एक घूंट पी लिया। राहत सी मिली। आंखों में पानी आ गया। धंसक खांसी या पता नहीं क्या। यह गांव का वह समाज है जहां सबसे बुरे समय पर सबसे बुरी नीतियां लागू की जाती हैं। सबसे कमज़ोर स्थिति में सबसे प्रबल वार किया जाता है। फिर साधा प्रहार-

‟बिर दिन तो अभी रंग चाव का था उमर ही कितणी होई है ? दिखे छोरा को मुंह देख कै याद ना आती होवेगी ? माया ने भी माया जाल सा फेंका।

‟कहवै तो ठीक है बहाण! ऐ अब भी सोच ले! घणी देर ना हुई है... म्हारे गांम मैं एक की लुगाई मरगी... उसनै भी ब्याह करणा है... दो छोरी छोरी हैं... बात बण जावैगी... बड़े छोरे नै मामा धोरै छोड़ कै छोटे नै साथ ले जा!” धन्नो पूरी निर्मम थी। अब माया भी चढ़े तवे पर अपनी सेंक रही थी।

‟हां क्यूं अपणो तो उजड़ो पड़ो है भाई को तो बस जाण दे! क्यूं उसनै भी बूढ़ो करण लग री है ? बुढ़ापा में वो कित जावेगो ? अर थोड़ा दिनां मैं छोरा तो अपणी बन्नो नै ले कै न्यारा हो जावेंगा फेर किसका सहारा लगेगी तू ?” सेंध क्या आज तो डकैती ही डाल दी इन लगालूतरियों ने।

"अभी तो उमर ही कितणी हुई है...? किस चीज की जरुरत ना पड़ती...? क्यांह खात्तर जी ना करता ? असल मैं ये ही दिन तो था खेलण खावण का..." चोट पर चोट। मर्म को बेधती जा रही थी। बिमला गुस्से को दबा रही थी। तपे जा रही थी। बड़ा लड़का ताईयों को गुस्से में घूरे जा रहा था।

भीतर के तूफान को रोकती हुई क्रोध और घृणा से बिमला बोली-

"थमनै और घरां ना जाणा ? भाई आवता होगा मेरा ! मन्नै रोटी भी बनाणी हैं!" बिमला ने घूरा। दोनों कटोरी रखकर खड़ी हो लीं। लोटा खाली कर दिया था। दोनों सट- सट चल पड़ीं। उनके बाहर निकलते ही बिमला ने जोर से किवाड़ों को बंद कर सांकल चढ़ा दी और बोली-

"घर तै साग भी दो और फूहड़ भी कहाओ!" बाहर दोनों ने सुन लिया। बिमला तेज कदमों से चलकर दालान पार कर भीतर गई। यूं नहाने धोने के लिए आंगन में ही ओट करके चौकी बना रखी थी। बिमला ने भीतर की कोठरी में कुंडी लगाई और धार धार दो बाल्टियों का ठंडा पानी सिर पर डाल लिया। पानी पतली मोरी से बहकर आंगन की बड़ी मोरी में आया और फिर वेग से गली की नाली में बह चला। पता नहीं बिमला का रोष बहा कि नहीं। मोटे खद्दर के कुर्ते पजामे पहने बच्चे समझ नहीं पा रहे थे कि मां ठंड में नहा क्यों रही है। टुकुर-टुकुर भीतर कोठरी के बंद दरवाजों और मोरी में तेजी से बहकर आ रहे पानी को देख लेते।

"मां चूरमा!" छोटा रो पड़ा।

"आऊं हूं" बहुत डूबे से गंभीर स्वर में बिमला बोली। कुछ ही क्षणों बाद वह बाहर निकली। चेहरा तमतमा कर लाल। आंखें जलती हुई सी। गीले बाल छितराकर कमीज़ को भिगो रहे थे। मगर ठंडक महसूस नहीं हो रही थी। बिमला को यूं देखकर बच्चों को ठंड से सुबकी बंध गई। दूसरी कोठरी से बिमला गुड़ ले आई। चूल्हे के पास बैठी, कपड़े में रखा और जोर-जोर से बेलन मारकर उसका चूरा बना दिया।

सांकल बजी।

खोलिये रै पहलवान! "पहलवान का स्वर।

"माम्मा!" कहकर छोटे वाला खाट से कूदकर भागा।

"तेरे पै ना खुलै मैं खोलूंगा!" कहकर बड़ा भी दौड़ लिया और बोला "माम्मा पहलवान मेरे तै कहवै है ! मैं खोलूंगा सांकल ऊपर घणी है"

बिमला ने खाट पर पड़ा मोटा चादरा उठाकर लूगड़ी की तरह ओढ़ लिया और चूल्हे पर तवा चढ़ा दिया।

दोनों भाई मामा को भीतर ले कर आए। अब छोटे वाले के पास बड़े की लाठी थी। और बड़े ने मामा वाली लाठी कंधे पर धर ली थी। मगर वह उसका संतुलन नहीं बना पा रहा था।

पहलवान लाड़ से दोनों के सिर पर हाथ धरे उनको आगे लिए बढ़ रहा था। बिमला ने देखा। अब उसकी मुख मुद्रा एकदम बदल चुकी थी। वहां एक स्मित मुस्कान तैर रही थी। वह जल्दी-जल्दी रोटियां बनाने लगी। पहलवान ने मोटी भारी जूतियां एक तरफ उतारीं। ओट में बनी चौकी की तरफ बढ़ गया। नहाने के लिए वहां बाल्टियों में पानी भरा धरा था। बच्चों को काम मिल गया। एक दौड़ कर गया मामा के कपड़े बैठक में से लेने भागा। दूसरा मालिश के लिए तेल की शीशी लेने भीतर दौड़ा। बिमला चूल्हे की आंच में रोटियां सेंकने लगी।

पहलवान का पूरा दिन खेत, घर, डंगर, गली, छत, बिमला और उसके दोनों बच्चों के आसपास मंडराते बीतता। रात को पहलवान को किसी ने सोते नहीं देखा। न आराम करते पाया। मुंह अंधेरे वह खेतों की तरफ हो आता। प्लो, बुवाई छंटाई, कटाई इत्यादि कर आता। सूरज उगते तो लौट भी आता। बिमला भी तब तक ज्यादातर काम निपटा चुकी होती। पशुओं का स्थान बदल देती। दूध निकाल लेती।, गर्म करने को रख देती, तब तक पहलवान भी आ जाता। पशुओं को नहला देता, मालिश कर देता, दिनों के अंतराल पर पशुओं को जोहड़ पर ले जाता। दोपहर छोटे-मोटे काम करता रहता। खाट की पांते कस देता, बांही सेरू ठोक पीट कर दुरुस्त कर देता। कहीं दीवार में ईंट रोड़ा लगा दिया। फावड़े खुरपे को पत्थर पर रखकर हथौड़ी से पीटकर या घिसकर धार लगा देता। आंगन में मिट्टी डालकर भरत कर देता। आंगन के पेड़ों, नीम, शहतूत, जामुन की छंटाई कर देता। सांझ तक फिर खेत का चक्कर। अंधेरे में लाठी कंधे पर रखता आ रहा है, जा रहा है, देर रात कभी छत पर टहलता कुत्ता बिल्ली को धमका रहा होता, कभी भैंसों की सानी, स्थान बदलना, गोबर हटाना उनको पानी पिलाना, नहीं तो सरसों के तेल से उनको रगड़ा मार रहा होता। मायने कुछ न कुछ काम लगा रहता। मगर चैन से बैठता सोता न था पहलवान।

लोग सब देखते समझते थे बातें बनाते थे-

“पहलवान तो भाई कत्ती जींद (जिन्न) सै...”

“हां रे ! बैरी ना थकता ना हारता ना आराम करता, बस लगा रहवै है...”

“सही रै कहवै है भाई ! अर कसाई हर बखत तैयार रहवै है जणूं दंगल की तैयारी कर रहया है...”

औरतें भी बातें करतीं। उसके कमेरेपन और समर्पण को सराहतीं

“आं हे ! यो पहलवान तै कत्ती पंजे गाड़ गया... अपणी बहाण और भाणजा के ऊप्पर तो कत्ती मरा जीवै है!”

“हां हे ! इसी ओट बणाए राखै है जणैं फौजी मोर्चा संभाल रहया है... ऐसा भाई तो राम जी सबने देवै...”

“सही कहवै है जीजी मामा मैं दो मां होवै है पहलवान नै तो यो बात सच कर दिखाई...”

(हवा सिंह से छोटे दोनों भाई भी हवा सिंह से अलग अपने हिस्से के खेत बो रहे थे। हवा सिंह और बिमला से दूर ही थे वह दोनों।)

इधर हवा सिंह भी अपनी छत चौबारे से पहलवान को देखता रहता। बस देखता रहता कुछ कहने करने की हिम्मत न होती। हवा सिंह का खास रोहताश प्रधान यूं तो पूरे इलाके में राजा जैसी हैसियत रखता था लेकिन घाटे के सौदे में हाथ डालने से पहले सोचता भी था। हवा सिंह का साथ देने के कारण लोग पीठ पीछे रोहताश चौधरी की बुराई भी करते थे। वह गलियों में से आते जाते हुए मर्द औरतों की बातें भी सुन लेता। देश को आजाद हुए कई दशक बीत गए थे। अब पंच प्रधान या राजा तो हो सकता था मगर परमेश्वर नहीं। पहलवान के पक्ष, त्याग और लगन का गांव भर कायल था। पहलवान को छेड़ना लोगों को भड़काना था। रोहताश यह बात अच्छे से समझता था। यूं तो कोई उजागर रूप से सीधे कुछ कहता न था, पर चुनाव में हर नए पुराने हिसाब को चुकता कर लेते ये बलरामपुर के लोग। यहां तक कि कभी भंरोटा, बोझ, मटका न उठवाने, कभी राम-राम न करने तक का उलाहना लोग चुनाव के वक्त देते हैं। फिर भी हवा सिंह और रोहताश चौधरी ने पहलवान को एकदम नज़र अंदाज कर दिया हो ऐसा भी नहीं था। बंटवारे के वक्त तो समस्या पैदा की ही, साथ ही नहर का पानी पहलवान के खेतों को न मिले इसके लिए तिकड़म। फसल को नुकसान पहुंचाने की कोशिश। लेकिन पहलवान ने हर मुश्किल को पटखनी दी, दुनिया के हर दाव को वह पेंच से काटता रहा, तमाम विरुद्धों को चित्त करता रहा।

हर कुछ दिन बाद एक नई लड़ाई तैयार रहती। मगर रूप बदलकर, ढंग बदलकर, तौर-तरीके, बहाने, पैंतरे बदलकर। मगर पहलवान लड़ रहा था, जूझ रहा था और जीत रहा था। बिमला भी संभल गई थी। पहलवान गांव में रच बस गया था। किसी से ज्यादा बोलता नहीं था। बस राम-राम ली, राम-राम दी और अपनी राह। रुकता कहीं न था। किसी को बात करनी हो तो साथ- साथ चलते हुए कर ले। न किसी के यहां जाना न बैठना। बस अपना घर खेत डंगर -ढोर, फसल हुई तो मंडी। यही सब पहलवान का जीवन और दंगल। इन्हीं से वह गुत्थम-गुत्था रहता। फिर भी रोहताश प्रधान और हवा सिंह कुछ न कुछ तिकड़म करते रहते। आए दिन कोई न कोई बहाना लेकर बिमला और पहलवान को तंग किया करते।

एक दिन की बात। पहलवान खेत पर गया हुआ था। बच्चे खेल कूद कर रहे थे। बिमला आंगन में भैंसों को संभाल रही थी। आस पड़ोस में खासी शांति बनी हुई थी, कि हवा सिंह की घरवाली ने बाहर गली में शोर मचा दिया। गालियां देनी शुरू कर दीं-

"या कोण रांड मरी है यहां...? इसके मर जा पूत, इसनै आ जा मौत, इसके मर जा भाई भतीजे जिसनै म्हारे बारणे (दरवाजे) आग्गै कूड़ा कर दिया...!"

मोहल्ले भर में उसकी कर्कश आवाज गूंज रही थी। धारा प्रवाह गालियां और शाप अभिशाप। घोषित-अघोषित रूप से उसका लक्ष्य पहलवान और बिमला। यह सांझ पांच छह बजे का समय था। उजाला ही था। ज्यादातर मर्द, लड़के खेतों में से अभी लौटे नहीं थे। हवा सिंह की घरवाली आसपास के घरों को सुना रही थी। लेकिन सब जानते हैं कि उसका प्रथम और अंतिम लक्ष्य बिमला है। बिमला ने चौखट से बाहर झांका। देखा कि हवा सिंह की घरवाली अपने घर के सामने गली में खड़ी मुंह उठाकर दहाड़ रही है। बिमला को देखा तो वह और ज्यादा उत्तेजित हो गई।

बिमला के दरवाजे पर इकट्ठा हुआ कूड़ा जिसमें आंगन भर की बुहारी नीम शहतूत की पत्तियां, फूंस, मूंज का कूड़ा था। कोई भी समझदार इंसान बता दे कि बिमला के घर से पहले जो बड़ा चौक है, जहां पंचायत होती है वहां से चली तेज हवा का बवंडर कूड़े को उड़ाकर गली के भीतर की तरफ ले आया है। यह कोई स्थाई कूड़ा नहीं था। बस उड़ता-फिरता झोंका था। मगर हवा सिंह का द्वेष उड़ता फिरता नहीं था। वह दिनों-दिन महीने साल के दौरान पत्थर से पहाड़ हुआ जा रहा था। हवा सिंह भी बाहर आ गया। वह बिमला को खा जाने वाली अंगारा निगाहों से घूर रहा था। गुर्राते हुए जबड़े भींचता हुआ बोला-

"किसे दिन टंटा ही खतम कर दूंगा! दाँ (दाव) लग गया तै... एक एक का घमंड उतार दूंगा..." फिर ऐसी गाली दी जो बिमला को लगी। पहलवान की बहन, कैसे करे सहन ? सगर्व बोली-

"जिसमैं दम हो आ ज्यावै... और लोग बेहा (बेहया) हो रे हैं... भरी पंचैत मैं उकात (औकात) की झंडी पाट ली अर ईब चूल्हे आगे के शेर बणै हैं..."

सुनकर हवा सिंह सुलग उठा। घुड़की देने लगा। बिमला का बड़ा बेटा जो तब तक दस साल पार कर गया था और छोटे भाई के साथ गली में थोड़ी सी दूरी पर साइकिल का टायर चला रहा था। उसने छोटे भाई के कान में कहा-

"जा भाज कै जा और खेत मैं तै मामा नै बुला कै ले आ! कह दिए हवा सिंह मां कै मारै है..."

छोटा लड़का जो नंगे पांव, कच्छा बनियान में था गोली की तरह खेतों की तरफ दौड़ता चला गया। गली में खासी भीड़ जुट गई थी। कोई देख समझ भी न पाया कि सात

आठ साल का सुघड़ बालक किस तरफ क्यों गया। गली पार होते होते बालक ने जो रटा था वह बोलता दोहराता दौड़ता जाए

"हवा सींग मां कै मारै है!

हवा सींग मां कै मारै है!

इधर बड़ा लड़का टायर डंडा वहीं छोड़ मां की तरफ दौड़ा। तुरंत भीतर गया और वह लाठी ले आया जो मामा उसे चलाना सिखा रहा था। लाठी लेकर वह मां की ओट बनकर आगे अड़कर खड़ा हो गया। हवा सिंह के दो लड़कियां ही थीं। इस बालक से छोटी। दोनों लड़कियां पार्श्व से बस निहार रही थीं। बिमला के बेटे की निगाह हवा सिंह पर टिकी थी। मां का अपमान सहन नहीं हुआ। तो गुस्से में बोला-

"मुंह संभाल कै बोलिए हवा सिंग ना तै यहीं हवा काढ़ देंगे..." सुनकर लोग हंस पड़े। हवा सिंह आग बबूला हो गया। निर्णायक क्रोधित स्वर में शब्दों को चबाते हुए

"इन सपोंला नै तो आज रगड़ दूं ! ना रहवेगा बांस ना बजेगी बांसुरी !"

कहता पुकारता वह बिमला और उसके बेटे की तरफ बढ़ा। उसके हाथ में एक पैनी धारदार दरांती थी। जिसे वह अब तक छुपाए हुए था। बिमला समझ गई कि "मार के बाद तो पुकार ही है... लड़के की बढ़ती जवान देह में चोट लग गई तो ?

साथ ही जब-तब औरतों की बातें याद हो आईं

"आं हे ऐसी दरांती मारी पेट मैं के आंत और नस न्यूं बाहर आ गई जणैं किसे नै रस्सी जेवड़ी का ढेर फैंक दिया हो"

यह बातें क्षण के सूक्ष्म खंड में याद कर बिमला ने बहुत कुछ सोच लिया और फैसला भी कर लिया। छतों, छज्जों गली में औरतों, बच्चों का जमघट लगा था। कुछ मर्द भी थे। मगर सिर्फ तमाशबीन। सही को सही ग़लत को ग़लत कहने का साहस किसी में नहीं था।

"पराए घर की राड़ अपणे घर मैं कोण लावै ?

"ऐ इस हवा सिंह का तो रोज का काम है दो कन्या हैं किस खात्तिर जोड़ेगा ?

औरतें कानाफूसी कर रही थीं। सबकी नजरें पहलवान को खोज रही थीं।

"बराबर का माणस हाज्जर ना है यो जाण कै रौला कर रहया है"

मर्द भी स्थिति का विश्लेषण कर रहे थे। मगर कानाफूसी में ही। उजागर रूप से चुप।

हवा सिंह अपनी पैड़ी पर से उतरा। कुत्सित तेवर थे। गली में अपने घर के मुख्य दरवाजे के सामने बिमला बेटे के साथ डटी हुई थी। लड़का गुस्से में था। इतना कि शरीर जकड़ गया। पंजे धरती में धंस गए। मुट्ठी लाठी पर कस गई। दांत कटकटाने लगे। कुछ कर पाने की स्थिति लग नहीं रही थी। क्रोध का अतिरेक किंकर्तव्यविमूढ़ बना देता है। क्रोध बुद्धि और देह का तालमेल खत्म कर देता है। मगर बिमला खूब सोच पा रही थी। हवा सिंह बिमला से दो चार

कदम ही दूर था। बिमला ने एकदम से लड़के के हाथ से लाठी ले ली। लाठी हवा में लहराई भरपूर वार हुआ। हवा सिंह ने अपना बचाव किया। लाठी का करारा ज़ोरदार प्रहार दरांती वाले हाथ पर हुआ। दरांती छूटकर नाली में जा गिरी। चटाक! की आवाज़ और हवा सिंह की चींख

"हाय रै हाथ तोड़ दिया हरामजादी नै! बाएं हाथ में दाया हाथ थामकर दोहरा हो गया। हाथ छोड़ते ही हाथ में दर्द हो रहा था। वह कराह रहा था-

"हाय टूट गया लगै!"

फिर अपनी घरवाली से गुस्से में बोला-

"मेरे मरण की बाट देख री है ? लाठी ला मेरी!"

सुनकर हवा सिंह की घरवाली भीतर दौड़ी और पलक झपकते ही लाठी लेकर हाज़िर। बमुश्किल बाएं हाथ से हवा सिंह लाठी थाम पाया। गुस्सा पूरा जोर आधा। दर्द से कराहते हुए दांया हाथ भी लगाया। जबड़े भींचकर लाठी थामी और मारने को उठाई। बिमला तैयार। लड़के ने वहीं पड़ा एक रोड़ा उठा लिया। हवा सिंह लाठी सिर के ऊपर ले जाकर फिर मां बेटे की तरफ बढ़ा कि शोर उठा

"पहलवान आ गया!

"रै पहलवान आ लिया आहा जी"

एक दो बच्चों के मुंह से निकला

"ओ बेट्टे ईब आवैगा मजा!"

सुनकर हवा सिंह की पिंडलियों में बांवटा (जकड़न, नस चढ़ जाना) आ गया। धड़कन रुक सी गई। गांव भर जुटा हुआ था। इस बारे में उसने सोच डाला कि बदनाम तो पूरा हो ही गया हूं, कोशिश करूं। और उसने सोच लिया कि पलक झपकने भर की ही तो बात है। या तो इस पार या उस पार। पूरी हिम्मत जुटाकर टूटे हाथ का दर्द दबाकर उसने वार करने के लिए लाठी लहरा दी। बिजली की गति से पहलवान ने कद्दावर पंजे में लाठी पकड़ जकड़ ली। हवा सिंह का हलक सूख गया। हालत ख़राब। उसकी लाठी पहलवान के हाथ में ऐसे आ गई जैसे मास्टर के हाथ में बैंत। हालांकि पहलवान के बाएं हाथ में उसकी अपनी मुग्दर सी लाठी भी थी। अगर वार कर देता तो ? चोर के पांव तो होते नहीं। दम उखड़ गया। सोचकर हवा सिंह का पूरा शरीर पसीने में नहा गया। दाएं हाथ में पकड़ी हवा सिंह की लाठी को ज़मीन पर गिराकर उसी हाथ की हथेली का जोरदार वार हवा सिंह की कनपटी पर किया। परिणाम देखने की जरूरत नहीं समझी। और सांसम सांस भाग कर आते छोटे भांजे को लपका और बड़े को ठेलकर सीधा घर के भीतर लगभग फेंक ही दिया। फिर लाठी दोनों हाथों में तौली तब तक हवा सिंह चक्कर खाकर दीवार में सिर टकरा चुका था। और नाली

में शरणागत हो चुका था। मुंह से खून देखकर हवा सिंह की घरवाली ने आपा खो दिया। चीखती चिल्लाती बदहवाश सी बिमला पर झपटी

"कमीणी ! अपणे नै तो खा गी अर मेरा भी मरवा दिया ! हे गाम राम भाजियो!"

दहाड़ती हुई वह बिमला पर झपटी। बिमला का जोर चोगुना हो चुका था।

एकदम निडर निश्चल खड़ी बिमला ने मजबूती से धरती पर पांव जमाकर दोनों हथेलियों का भरपूर धक्का उसके सीने पर मारा। बिल्ली की तरह तने उसके पंजे हवा में ही रह गए। और वह भी उठने का असफल प्रयास कर रहे हवा सिंह के पास जा गिरी। गिरते-गिरते इतना ही कह पाई "हाय मां ! मार दी !"

"परै मरै ना !" बिमला ने गुस्से में कहा। अब तक अपनी चौखट पर खड़ी टुकुर टुकुर देखती हवा सिंह की लड़कियां रोते हुए दौड़कर आईं और मां बाप को उठाने लगीं।

"चाल भीतर !" पहलवान ने बड़े गंभीर स्वर में बिमला से कहा। और अपनी मुग्दर सी लाठी लेकर वहीं दरवाजे पर खड़ा हो गया। वह जिस भी तरफ निगाह भर कर देख रहा था भीड़ काई की तरह फटने लगी थी।

"चाला हो गया"

"हां एक ना झेल पाया ! बणै है चौधरी"

"अगर पहलवान अपणी लाठी का करड़ा वार कर देता तो...?

"तो भगवान के घरां पहोंचता सीधा" मुस्कुराते बतलाते लोग अपने-अपने घरों को जा रहे थे।

"समझ ले बकस दिया पहलवान नै! इस हवाए की तरियां वो भी लिहाज ना करता तो उड़ लेते प्राण पखेरू..."

हवा सिंह और उसकी घरवाली भी लड़कियों के सहारे गिरते पड़ते अपने घर में घुसे।

बातें हुईं। चर्चा हुई। हवा सिंह ने प्रयास किए। रोहताश चौधरी से भी मिला परंतु पंचायत नहीं हो पाई। सब जगह से हवा सिंह की गलती सिद्ध हो रही थी। हवा सिंह का भी पानी मर रहा था। क्या करता। मन में खूब द्वेष। कुंडली मारकर वह भी ताक में रहने लगा। प्रयास कर रहा था। मगर बातें यही थीं कि

"हां भाई जब लुगाई-लुगाई लड़ री थी तू के टिंडे लेण कूदा बीच मैं ?

"अरै जब बीच में पड़ा भी तो छुड़वा देता दोनों नै ! खुद हाथ क्यों उठाया ?

"हाथ उठाया ? जो अगर बिमला डंडा ना मारती तो बड़े छोरे का गला काट देता दरांती तै ! यो तो बिमला की भलाई है कि पंचायत ना बुलाई और सुणा है कि आजकल तो पुलिस भी पकड़ ले है ऐसा नै !"

इस तरह की बातें सब तरफ थीं। मगर हवा सिंह नित नई तिकड़में लगाता रहता। पहलवान और भी ज्यादा चौकस और मुस्तैद हो गया। पहलवान का प्रभाव और बढ़ गया गांव में। प्रशंसा बिमला की भी हो रही थी।

"हे बेबे बिमला तो कत्ती पहलवान की बहाण है असली !"

"हां जीजी यो बात तो है... बीर मरद दोन्नूं कूट दिए अकेली नै..."

वगैरह-वगैरह। जितने मुंह उतनी बातें।

पहलवान को खेती संभालते कई साल हो गए थे। मगर खेती अब भी साहूकारों आढ़तियों के सहारे हो रही थी। रही सही कसर खाद पानी के सरकारी इंतजाम ने पूरी कर दी। पानी के नाम पर बरसाती पानी या फिर नहर का वह पानी जो बड़ी मुश्किल से मिल पाता। ब्याज बट्टे और आढ़तियों के मायाजाल को पहलवान ने बख़ूबी समझ लिया था।

"किसान के तीन बैरी होवै है भाई !"

"के रै पहलवान ?

"साहूकार, आढ़ती और भाइ यो राम जी !"

साथ के खेतों में काम कर रहे किसानों को पहलवान समझाता। पहलवान समझ गया था कि सरकार और साहूकार को सूखे और बरसात से कोई मतलब नहीं है। सरकार को किसानों के उपयोग की चीजें महंगी करनी ही करनी हैं। और साहूकार को तो ब्याज लेना ही लेना है। गांव में कहा भी जाता।

"भाई साहूकार और पंडत न्यूं जाण ले के मां जाए भाई हैं !"

"वो किस तरिया भाई ?

"अरै सीधी बात ! पंडत न्यूं चाहवै के वर मरो चाहे कन्या हमनैं तो दान दक्षिणा तै काम और भाई साहूकार न्यूं के सूखा पड़ै चाहे बाढ़ आवै हमनै तो ब्याज बट्टे तै मतलब..."

"अच्छा भाई ! यो बात ?

"यो भी एक बात"

"अरै यो भी के मतलब ?

"मतलब यो के पंडत सारे खर्चे के उपाय बतावै शुभ-अशुभ, व्रत पूजा, हर दिन त्यौहार..."

"फिर ?

"फिर के ? सारे उपाय और व्रत त्यौहार का सामान साहूकार बेचै नगद मैं मारै, उधार मैं काटै और ब्याज मैं तो कती जी काढ़ ले है..."

लोग जान समझ रहे थे। मगर ऐसे जंजाल में फंसे थे कि चाह कर भी निकल नहीं पा रहे थे। यहां के ज्यादातर किसान फंसे हुए थे। पहलवान समझ चुका था और साथ ही किसानों को भी समझाता।

"देखो भाई ! जो अगर साहूकार तै ब्याज बट्टे पै रपिया ले कै खाद बीज खरीदा और आढ़ती की आढ़त पै फसल गई तो दोहरी मार पड़ेगी ! अपणे चारूं तरफ निगाह मार कै देखो ! सारे किसान इन्हीं दोहरी-तिहरी मार तै मरे पड़े हैं याद है ना ? सूखा ?

"साहूकार और सरकार !" बाकी साथी उसकी बात पूरी करते। मगर कुछ पूछते भी

"पर पहलवान के करैं भाई निरी खेती तै खेती का पूरा ना होंवता"

"अरै खेत तो अपणी लागत ही ना निकाल पावता म्हारी मेहनत तो बहोत बाद की बात है जिस तरिया अपणा हाथ अपणी कमर पै पूरा ना फिरता, खेत भी अपणी पूरती नहीं कर पांवता..."

"और भाई तू तो फौजी पै मंगवा ले है हम कित जावैं ? तेरा तो एक हाथ तेरा भाई भी तो है... हम कै करैं ? एक अन्य ने कहा।

यह बात सच भी थी। इस पंचवर्षीय योजना के पहले दो साल तो अच्छी पैदावार हुई मगर अब सूखा और युद्ध के कारण सरकार ने भी हाथ खड़े कर दिए। यहां खेत का ही पेट नहीं भर पा रहा था। बिमला और बालकों का क्या भरता ?

ऐसे में पहलवान ने अपने पिता से पैसे मंगवाए। चूंकि सभी किसानों की स्थिति अच्छी नहीं थी। मगर छोटे बेटे (पहलवान का छोटा भाई) की फौज में नौकरी होने से उनको राहत थी। तो यह राहत बिमला तक भी पहुंची। यह बात समझ के तौर पर पहलवान ने अन्य किसानों को बताई

"खेती मैं तो पूरा ना पड़ता यो तो पता है... रही बात कि कित जावैं ? तो भाई पूरा कुणबा खेती मैं मत टूटो ! एक दो बालक अगर खेती करैं तो एक नै किसी और काम धंधे मैं लगा दो ! कोई और काम धंधा हो, नौकरी हो तो काम चाल जावै... ना तो खेती तो कुत्ते का हाड़ है..."

"कुत्ते का हाड़ ? मतलब ?

कईयों ने आश्चर्य से पूछा।

"हां मतलब यो कि मांस के चक्कर मैं कुत्ता हड्डी नै ना छोड़ता, चबाता रहवै है, जिसतै उसके मसूड़े कट-छिल छावै हैं, ख़ून निकलने लगै तो अपणा ही खून मीठा नमकीन लगै, वो समझै कि हड्डी मैं तै स्वाद आवै है। जो असल मैं उसके ही खून की होवै है और वो हड्डी नै छोड़ता ना, तो यो ही हाल खेती का है... लागत तो पूरी होती ना... जमीदारें की शान के लालच मैं पूरा कुणबा जुटै-खटै वो न्यारा... चौधर मान के चक्कर मैं किसानी

छोड़ते ना अर किसी और काम धंधे नौकरी खात्तर ना बखत बचै ना ताक़त रहती और ना घमंड कम होंवता, तो होया ना कुत्ते का हाड़ !"

सब पहलवान के बुद्धि चातुर्य से हैरान होते। मगर फिर छेड़ते भी।

"अरै पहलवान इतणी बारीक ज्ञान की बात तेरी बैल बुद्धि में कित तै आई ?

"हट्ट ! मेरे साले !" पहलवान झुंझलाता और माटी का ढेला उठाकर मारता।

"साला होगा तू !" कहकर सामने वाला दौड़ता और हंसता। हंसता पहलवान भी। ये आसपास के खेतों वाले वह किसान थे जो हवा सिंह के कुनबे के ही थे मगर हवासिंह से खुश नहीं रहते थे। पहलवान उन्हें सहज सच्चा लगता था। हमेशा तो नहीं, पर कभी-कभी पहलवान उनके विनोद परिहास में शामिल हो जाया करता था। मगर ढील नहीं छोड़ता था। पहलवान द्वारा अपने घर से पैसा मंगवाकर खुद्दारी से रहना। अन्य किसानों को साहूकार सरकार के खिलाफ समझाने से साहूकार भड़क गया। अब साहूकार भी हवा सिंह रोहताश चौधरी के साथ मिल गया। अब पहलवान को तंग करने वाले तीन हो गए। गांव में कहा भी जाता था।

"तीन तिगड़ा काम बिगाड़ा"

बरसात की उम्मीद में पहलवान ने धान लगाने की सोची। धान लगा भी दिया।

पहला पानी तो किसी तरह नहर से लगा दिया। मगर अब सूखे ने पीछे हटने से साफ इनकार कर दिया। उल्टे बरसात को उसके उच्छवास से पीछे हटना पड़ा। अड़ ही तो गया निर्भाग सूखा। पिछले कई सालों की बरसात और पैदावार से उत्साहित होकर धान लगाया। मगर बादल बिन बरसे ढीठ से लौट रहे थे। नहर का भरोसा। मगर पहले हवा सिंह के खेत पड़ते थे। उसने पानी ले लिया। पहले कौन कितना पानी लेगा यह तय करने वाला रोहताश चौधरी। रहट चलता रहता। हवा सिंह ने ज़िद ज़िद में ज्यादा पानी भरा। पहलवान के खेत सूख रहे थे।

"न्यू तै बात कोन्या बणैं ? पहलवान बिमला को बता रहा था।

"फेर ईब के करैं ? बिमला भी चिंतित थी कि पता नहीं कब लड़ाई झगड़ा बन जाए।

"कुछ और करणा पड़ेगा !"

"के भाई ..?" बिमला अनहोनी से आशंकित थी कि जाने क्या सोच और कर बैठे भाई।

"हूं... हूं... सोचूं हूं..." कहकर पहलवान हाथ पांव धोने होदी की तरफ चला।

पहलवान रात भर विचारों, बातों, तथ्यों और वास्तविकता से गुत्थम-गुत्था रहा। सुबह विजयी भाव से जगा। बड़े भांजे ने गर्म दूध का लोटा और कांसे की कटोरी लाकर दी।

“मामा दूध..!” कहकर बालक चूल्हे के पास। जहां बिमला ने उसके और छोटे भाई के लिए कांसे के बेले (कटोरे) में दूध डालकर रखा हुआ था। अभी सूर्य उदय होने में कुछ समय था। दूध पीकर पहलवान और बड़े लड़के को खेत जाना था। बड़ा लड़का पंद्रह साल का हो रहा था। तंदुरुस्त। निकलता बढ़ता सा। जैसे कच्चा हरा पल्लवित होता तरुण वृक्ष। बिमला उसे जल्द से जल्द बड़ा करना चाहती थी। इसलिए खाना ख़ुराक़ पर पूरा ज़ोर ध्यान था। पहलवान उसे ताकतवर और समझदार बना रहा था। लाठी चलाने से लेकर खेत का काम और लोगों के दांव-पेंच को जानना समझाना इत्यादि।

“के विचार बणा भाई रे ?” बिमला ने बच्चों के बेले में और दूध डालते हुए पहलवान से पूछा। पहलवान का लोटा बिमला दोबारा भर गई थी। बोला-

“बस बेबे और ना ! हां सोच लिया ! टूवल (ट्यूबवैल) लगावैंगे हम भी ! फेर ना नहर का झगड़ा, ना चौधरियों का रोला ना कहासुणी...” पहलवान निर्णायक स्वर में बोला।

“पर भाई वो तो बहोत महंगा होवैगा ? अर फेर बादलां की तरिया बिजली की बाट देखे जाओ...” बिमला ने अपनी समझ बताई। पहलवान जैसे इन बातों, सवालों को रात के वैचारिक द्वन्द्व में पटखनी दे चुका था। सहर्ष बोला-

“इंजण धर लेंगे, तेल वाला ! जब मर्जी चला लेंगे... रही बात महंगे की तू क्यूं फिकर करै है एक आध दिन मैं सुभाष का मनीओडर आ जावैगा...!”

बिमला ने खूब सराहा अपने भाइयों और भाग्य को। नज़र न लगे इसके लिए चूल्हे की जलती लकड़ी से लिपे हुए हिस्से पर काले टीके करने लगी।

पहलवान ने ट्यूबवेल के लिए प्रयास शुरू कर दिए। इस बीच यूरिया, खाद, बीज और कृषि उपयोगी वस्तुओं के दाम बढ़ने लगे। इनकी कालाबाजारी होने लगी। कालाबाज़ारी वाले सरकारी अधिकारीयों नेताओं के चहेते, कुछ तो लीडर ही बने हुए थे छोटे-मोटे, किसान परेशान थे कि क्या करें। फसल बोने से लेकर मंडी में बेचने तक पर इतनी मुश्किल-

“मुश्कल हो गी रै पहलवान ! फसल लगावण तै ले कै मंडी में बेचण तक इतणे झंझट खड़े कर दिये हैं जणूं खेती करकै किसाण कोई पाप कोई ज़ुलम करै हैं...”

“कौण रामें भाई...? पहलवान पूछता”।

अरै सबके सब ! के दुकानदार, के व्योपारी, के आढ़ती और के सिरकार...! सारे बैरी हो रे हैं म्हारे तै ! “यह बात पहलवान शिद्दत से महसूस कर रहा था। मगर अभी उसने आस हिम्मत नहीं छोड़ी थी। मायने अखाड़ा छोड़ा था, ज़मीन नहीं छोड़ी थी।

किसानों के बालक शहरों का रुख करने लगे थे। सिर्फ और सिर्फ खेती से परिवार नहीं चल सकता। यह बात किसानों को समझ आने लगी थी। घर-घर से जवान रोजगार की

तलाश में शहर जा रहे थे। बूढ़े चिंतन-मनन कर रहे थे। ये गुलामी और आज़ादी दोनों देख चुके बूढ़े अनुभव जनित पीड़ा से रो रहे थे।

"क्यांह खात्तर जवान मरे ? फांसी खाई ! हाड़ गोड़ तुड़वाएं ? यो तो फेर अंग्रेज सिरकार जैसी हालत हो गी... वे घर में घुस कै फसल उठा ले जावे थे और ये फसल तैयार होते-होते इतणा निचौड़ लेवै हैं के बालकां खात्तर कुछ बचता ही ना...! ईब भाई पहलवान नै तो बाप और फौजी भाई के बूते बुरा बखत काट लिया! अर म्हारे जैसे के करै...?

"हारे का सहारा, साहूकार हमारा" ज़मीनें गिरवी रखी जाने लगीं। बिकने भी लगीं। कोई हिसाब ही नहीं था। लोग कहते-

"हमनै तो बेरा ना भाई ! जो बही मैं है, वो सही मैं है"

इधर पहलवान जिस भी नलकूप वाले से बात करता है वह या तो खाली नहीं होता या दाम कई गुना ज्यादा मांगता। यूं तो लगभग गांव भर पहलवान का सम्मान करता था मगर रोहताश चौधरी का भय भी अच्छा खासा था।

"देख भाई ! पहलवान है तो बेचारा गऊ माणस पर भाई वो खागड़ (सांड) रोहताश भी तो है... उसका के करैं...? के पता कित दूण (टक्कर) मार दे...? कहां की चीस कहां निकालै ? कुछ ना बेरा... पाणी मैं रह कै मगरमच्छ तै बैर ना सधा करै... और उसके धोरै तो हवा सिंह जैसे चेले चपाटे हैं, जो अपणे भाई के बालकां की जान का गाहक हो रहा है... वहां तो चलो बचा लिया पहलवान है बचा गया बहाण का घर, कोई ना ईब भी कोई दांव पेंच लगा ही लेगा..."

और रास्ता भी निकला। पुरानी लीक ही रास्ता बनी।

पहलवान का अपना गांव। पहलवान का घर। बड़ी सी बैठक में पहलवान का पिता भारी-भरकम सनी के पलंग पर बैठा हुक्का पी रहा था। सामने मूढ़े पर गांव में नल-ट्यूबवैल का मशहूर कारीगर "मामन डागर" उर्फ मूला जाट बैठा हुआ था। इनकी बोली भाषा यहां तक कि नाम और सरनेम तक जाटों वाले होते हैं। मगर इनके पुरखों ने मुस्लिम शासकों के समय इस्लाम कुबूल कर लिया था तो मुल्ला भी हो गए और जाट भी रहे। बन गए मूला जाट।

"देख भाई मामन मामला छोरी का है ! अगर निभा सकै तो हां करिए !"

"कोई बात ना ताऊ ! जैसी थारी बेटी वैसे म्हारी। चिंता मत कर मैं लड़के नै भेज दूंगा। कद जाणा है...?

भाई पहलवान नै बेरा तो काल भेजा था, आज काल मैं हो जा रवाना। आप जा चाहे बालकां नै भेज पर भाई बहाण का मान रहणा चहिए गाम मैं... ऐसा ट्यूबल लगा दे कि कदे भी पाणी की कमी ना रहवै...!"

तय दिन मामन डागर के दो लड़के अपने औजार लेकर रवाना हो गए।

इधर हवा सिंह पानी ही नहीं छोड़ रहा था। कई-कई बार क्यारियां भरकर पौध गला दी मगर मान नहीं रहा था। पूरी ढीठता के साथ कहता भी-

"बेसक घर फुंक जावै पर मुस्या (चूहों) कै आंख होणी चहिए...!"

क्यारियों की मेड़ चिकनी मिट्टी से वह ऊंची किए जा रहा था। खेत समंदर हो गए थे।

इधर मामन के लड़कों ने जाकर पहलवान की बैठक के दरवाजे की कुंडी खड़का दी। पहलवान ने बहुत खुशी और हर्षोल्लास से "आओ भाइयों" के साथ गले मिलकर स्वागत किया। खूब सेवा सत्कार किया। रात अच्छा भोजन करवाया। खाने के बाद फुर्सत में आमने सामने बैठे तो तीनों उदास से थे।

"भाई पहलवान तेरी याद बहोत आवै है, हर दूसरे तीसरे दिन जब भाई दंगल जीत कै आवै करै था और कंधों पै बिठा कै लाया करैं थे... पर अब तो बस..."

"कोई ना भाइयों ! यो भी दंगल ही है... इसमैं भी अपणे गांव की इज्जत है... बहाण तै वचन दे राखा है..." थोड़ी चुप्पी। तीनों अतीत वर्तमान से टकराते भीगे-भीगे से।

अगली सुबह। मुंह अंधेरे खेत पहुंचे। और एक स्थान चिन्हित कर चौधरी सूरत सिंह का नाम लेकर खुदाई शुरू कर दी। पहलवान जुट गया भारी भरकम फावड़ा लेकर। बड़ा भांजा और दोनों कारीगर देख रहे थे पहलवान का अलग ही रूप। कारीगरों से पहले खुद ही जुट गया। लगातार खुदाई कर कुआं सा खोदा, जो इतना चौड़ा कि तीन चार आदमी बैठ सकें उसमें। आठ दस फुट खोदकर फिर बोरिंग करने की प्रक्रिया। कुंए के बाहर धरातल पर तीन बल्लियां गाडकर उनके सिरे मिलाकर एक तिपाही सी बनाई गई। उसमें घिरनी बांधी गई। घिरनी से रस्सा। रस्से से बोंकी। देखने में बोंकी लोहे का पाइप लगता है। जो घिरनी की ऊंचाई से कुए के केंद्र में चिन्हित जमीन पर गिरता तो उसमें मिट्टी भर जाती। पहलवान रस्सी को खींचता। रस्सी घिरनी पर से ऊपर आती। और ऊपर खींची आती वो बोंकी भी। बोंकी लगातार भारी होती जाती। पहलवान उसे ऐसे खींचता जैसे पनघट पर पनिहारिन पानी की बाल्टी खींचती है। लोहे की पाइप उत्तरोत्तर रेत, मिट्टी, कंकरीली मिट्टी, पथरीली मिट्टी और कीचड़ से भरकर और और वजनदार होकर आने लगी। लेकिन पहलवान दम लगाकर उसे खींचता। जैसे धरती के गर्भ से अपने बहन भांजो का हिस्सा खींच कर ला रहा हो।

पहलवान अकेला कई आदमियों के बराबर काम कर रहा था। जब लोहे का यह पाइप कीचड़ मिट्टी से भरकर आता। कारीगर उसे एक तरफ खींच लेता। उसके अलग-अलग हिस्सों पर हथोड़ा मारता। सारा रेत, माटी, कंकर, पत्थर ज़मीन पर 'धसड़-खसड़' से आ गिरते। बोंकी खाली होती और खाली बोंकी तेजी से फिर बोरवेल में छोड़ दी जाती। यह

प्रक्रिया सैंकड़ों हज़ार बार हुई। पूरा दिन, पूरी रात निकल गई। दोनों बेटों को साथ लेकर बिमला खेत में ही खाना पानी देने आई।

"भाई रै ! लो रोटी खा लो ! पूरा दिन हो लिया पूरी रात..!

"आंवै हैं बेबे ! बस न्यूं जाण ले के चौवे (जलस्रोत) के धोरै हैं कती...!"

पीहर से आए कारीगरों ने स्नेह से कहा।

"अरै भाई मेरे ! चौंवा किते भाज कै ना जा रहया पर रोटी ठंडी हो जावैगी !"

बिमला ने पुनः कहा। वहीं पेड़ के नीचे एक कपड़ा बिछाकर खाने के कटोरदान, लस्सी की डोली, गिलास इत्यादि लगाकर दस्तरखान सा सजा दिया।

पहलवान अब काम को अधूरा नहीं छोड़ना चाहता था। क्या पता कोई बोरवेल में पत्थर गिरा दे। कोई जानवर ही गिर जाए। ढेरों आशंकाएं। खाना खाकर फिर जुट गए। और चौवा फूट पड़ा। अर्थात जलस्रोत मिल गया। पाइप बिठाकर नलकूप भी फिट किया। इंजन भी रख दिया गया। हैंडल मारकर चलाया। दिल की धक-धक के साथ इंजन की धुक-धुक दूर तक गूंज गई। खूब सारा काला धुआं छोड़ कर इंजन पूरी ताकत से चल पड़ा। पहले तो कीचड़ आता रहा। कीचड़ का गाढ़ापन कम हुआ तो गंदला रेतीला पानी और पानी साफ़ हुआ फिर चांदी सा साफ़ सफेद पानी आया। अंजुरी आगे बढ़ाकर पहलवान ने थोड़े बहुत रेत के बावजूद पानी का घूंट पिया, और बहुत खुशी के साथ लगभग झूमते हुए बोला-

"मीठा है !" जैसे सब्र का फल। आंखें छलक आईं। बिमला खीर बनाकर लाई थी वही मीठे के तौर पर चढ़ा दी। साथ ही खेत में पंद्रह बीस ईंटों का एक छोटा सा चबूतरा बना दिया। उसपर कुछ ईंटे सीधी खड़ी सटाकर रख दीं और स्वर्गीय चौधरी सूरत सिंह की समाधि" की बुनियाद रखी दी। ताजा निकले पानी से धो-नहलाकर वहां भी खीर का भोग लगा दिया गया। बहुत खुशी हुई। सभी पीर-पित्तरों, साधू-फकीरों को याद कर मनाया गया। कारीगर खुशी खुशी-खुशी विदा हुए। मजदूरी नहीं ली। बोले-

"अरै भाई पहलवान ! बेबे बिमला ! हम अपणे आप ताऊ तै हिसाब कर लेंगे... और बेबे तेरे पै रपिए ले कै हमने के नूण मैं गलना है...? अर ले तेरा नेग-मान..."

कहकर उन्होंने बिमला और भांजे को भी मान के तौर पर रुपया दिया। बिमला तो फूली नहीं समा रही थी। सामने भाई साथ में जवान होते बेटे। खूब अच्छी उपजाऊ धरती और अब मीठा पानी। और मीठे पानी को धरती में से निकाल कर ले आने वाले पीहर के दो और भाई।

मीठे पानी की बात हवा सिंह को बेहद कड़वी लगी। पानी की किल्लत थी। खेती संकट में थी। इसकी किल्लत को और बढ़ाकर हवा सिंह पहलवान की खेती के साथ-साथ बिमला को भी संकट में डालना चाहता था। मगर खुद ही संकट में पड़ गया। सूखे ने दस्तक

दे दी थी। देश की ज्यादातर खेती सूखे की भेंट चढ़ गई। चौथी पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य पिछले दो साल तो ठीक रहा मगर अब मुश्किल हो चुकी थी। लेकिन पहलवान तो जैसे सही समय पर अचूक दांव लगा गया था । साथ ही वह सबके दुख-दुविधा में शामिल भी था।

"अरै ईबे तो कत्तहर (सन् इकहत्तर) की लड़ाई तै भी ना उभरे हैं... ऊपर तै यो सुक्खा भी आ लिया... मतलब कोढ़ मैं खाज..."

"रै कोई ना भई पहलवान ! पाणी का तो तन्नैं कर दिया है… म्हारै भी सहारा लगा दिया... ईब बढ़िया खाद पाणी लगा कै चोखी सी फसल कर देंगे..." पड़ोसी किसान उत्साहित था। वह पहलवान की राजी मे राजी था। मित्र भाव खूब था। पहलवान ने चेताया-

"इतणा राजी मत हो ! मंडी मैं जा कै देख ! फटीलैजर के भा हो रखा है ! पतंग की तरियां भाव चढ़े जा हैं... सीऽऽऽधे अक्काश मैं !"

"अरै भाई पहलवान ! ये भा (भाव) के सिरफ म्हारे खात्तर है...? सब खात्तर है और भाई देस पै संकट है तै हम सबनैं देस के बारे मैं पहला सोचणा चहिए..."

ऐसे तर्कों से पहलवान को भी हल्का-फुल्का रोष आ ही जाता। तमक कर कहता-

"अरै देश की सारी किसाण ही सोचेगा के...? देस तै नाज (अनाज) दे, दूध, फल, सब्जी किसान दे, लत्ते कपड़े खात्तर कपास किसान दे, खाने का तेल, हल्दी, मिर्च, मसाले सब किसान दे, और तै और हर घर मैं तै फौज खात्तर जवान किसान दे... अब सरकार के सिरफ तेल खाद के दाम बढ़ाणा जाणैं है...? सरकार है या ब्योपारी...?

पहलवान तमतमा जाता तो दूसरों की समझ में आ जाता। मगर जब किसी की बात मान ली जाती है तो अति उत्साह भी आ जाता है, बोला-

"सूखा पड़ जावै तै सरकार पाणी ना दे ! बांध बणाकै बिजली बनावै तै बिजली शहरां मैं भेज दे... हम और म्हारी फसल सूखे तै मर जावैं, और जब राम जी घणा बरस जावै तै बांध का पाणी खोल दे उसमै डूब कै मर जावै, हैजा और मलेरिया तै... मतलब हर हाल मैं मरण किसाण का ही है... सरकार ना पाणी का बंदोबस्त कर पावै और ना नाज रखण का... हर फसल खुले आकाश तलै नाज सड़ै है... यो इंतजाम होता नहीं सरकार पै और चांद पै जाण की कहवै है..."

"पहलवान कहवै तो ठीक है भाई पर यो बेचारा देस भी के करै ? छोटे भाईयां तै दुखी है... एक तरफ न एक छोटा भाई दूसरी तरफ दूसरा छोटा भाई ! ईब देख दोन्नूं न्यारे (विभाजित) होए हैं लड़ाई करकै... अर दोन्नूं बार धन लगाया बड़े भाई नै मतबल म्हारे देस नै... ऊपर तै दोन्नूंआं के बालक भी म्हारै आ कै बस गए। उनका खर्चा और अलग। बता

ले अपणा तो गुजारा होता ना और पड़ोसियां के बालक और पालो... ईब सिरकार भी कित तै खर्चा पाणी काढ़ेगी...?

साथी किसान पहलवान और दूसरे किसानों के सामने महंगाई का मूल कारण युद्ध और पड़ोसी देशों से आ रहे शरणार्थियों को घोषित करता।

पहलवान को लगता जैसे वह देश का नहीं पहलवान के दिल का हाल बता रहा है। पहलवान का दर्द भी पड़ोस से ही आ रहा था। घर से लेकर खेत तक पड़ोसी ही उसे सेहद रहा था। वह व्यथित होकर बोलता-

"रै भाई राम्में यो ही भाईयां वाली दिक्कत ही तो नाश की जड़ बण रही है... मन्नैं भी मेरे जीजा के भाई तंग कर रहे हैं। बता कद तक सबर करूं ? ये दो भाणजे हैं और ये दो खूड़ (खेत) हैं... इनपै ही आंख गड़ी है सबकी... बता ले कदे डोला काट ले, कदे पाणी रोक ले, कदे दीवार दाब ले है, और ना तै कूड़े नाली पै ही रोला कर दे है.. रोज का खाड़ा (अखाड़ा) हो रहया है... आधी सूद का ज़ोर तै इन भाईयां नै ही ठीक करण मैं चला जावै है..."

अन्य किसान भी पहलवान की बातों का समर्थन करते। भरसक सहयोग भी करते मगर रोहताश चौधरी और हवा सिंह से उजागर दुश्मनी नहीं साधना चाहते थे।

वक्त बीतता रहा। दिन धूप में तपता तो रात ठंडक में सिंहर जाती। सूरज निकलता। अंधेरा दूर और दिन फिर दौड़ पड़ता। पहलवान जैसे अकेला नहीं अपने दसों रूपों प्रतिरूपों के साथ जुटा हुआ था। घर, छत, चौबारे, गली, गांव, खेत-खलिहान, फसल काटता, फसल ढोता, मंडी में भाव के लिए बहस करता, ढोर-डंगरों को लेकर जोहड़ पर उनसे बोलता बतलाता आदि इत्यादि।

पहलवान सब जगह था। बिमला अपने भाई पर जीती मरती थी।

इधर बिमला के लड़के जवान होते आ रहे थे। बड़ा एकदम पिता की प्रतिछाया हो चला था। जब तब बिमला को दिखता तो क्षणांश में हीं जैसे अतीत को जी लेती। आंखें भर आतीं। पीर फकीर, पूर्वजों पित्तरों को मनाती। बुरी नजर से बचाने को खूब जतन करती।

जो बिमला ने जिया, जो पहलवान ने किया, वह जीवट बस देव कथाओं में तो मिलता है मगर आसपास के सौ पचास गांवों में और इन सबके सौ पचास सालों के अनुभवों, यादों में नहीं था। अब बड़ा लड़का ब्याह की दहलीज पर था और पहलवान सन्यास आश्रम के दरवाजे पर। हालांकि सब का विचार बन रहा था कि दोनों लड़कों को एक साथ ब्याह दे बिमला-

"अरै बेटा पहलवान ! भतेरी तपस्या कर ली तनैं, बस ईब इन दोन्नूं बालकां नै और ब्याह-सगा दे तै बिमला नै भी आराम हो जा..." पहलवान ऐसे प्रश्नों के लिए पहले ही खूब खूब-मंथन किए रहता"

"अरी मौसी ! ब्याह तै दें पर फेर कुणबा भी तै बड़ा हो जावैगा... और निरी खेती तै पूरा ना पड़ता... इस मारे बड़े नै तो ब्याह देंगे पर छोट्टे नै कुछ पढ़ण का टैम देवेंगे..." पहलवान के इस विचार में बिमला का विचार भी समाहित होता था।

खतरा अभी टला नहीं था। इसलिए इस गांव पड़ोस के माध्यम से मिलने वाले रिश्तों के प्रस्तावों को नकारकर पहलवान और बिमला ने अपने भाई फौजी सुभाष के ससुराल वालों की मध्यस्थता से रिश्ता लेने का विचार बनाया। वह लोग पहलवान के त्याग-तपस्या का बड़ा मान सम्मान करते थे और फिर वह दिन भी आया।

बिमला के बड़े बेटे सूरज सिंह का ब्याह है। दूर पास के सभी रिश्तेदार आए हुए हैं। घर सजा हुआ है। नया रंग-रोगन, सफ़ेदी, रंगीन कागज़ों की झंडियां सूतलियों से बांधकर पूरी गली शामियाना सी सजा रखी है। गांव में घर बनाना और ब्याह करना फसल के बाद ही संभव हो पाता है। पहलवान ने भी भांजे का ब्याह गर्मियों में रचाया है। गली, बैठक, आंगन, दालान, छत, चौबारे यथायोग्य सम्मानित रिश्तेदारों से भरे हुए हैं। गांव बिरादरी के समझाने से सूरत सिंह के सबसे छोटे दो भाई तो अनमने से शामिल हो गए। मगर हवासिंह किसी भी सूरत नहीं आया। उल्टा यह कहलवा दिया-

"वो घमंडी लुगाई अगर मेरे पैरों मैं पड़ कै अर ओढ़णा पसार कै गल्ती मान्नैं तो भी बस सोच सकूं हूं... जाणा तो सुपने मैं भी ना..."

"इसे नीच के मुंह के ऊपर मैं थूकूं भी ना... अर मेरे भाई, भतीजे, बेटे बणें रहवै फेर चहे राम जी रूस (रूठ) जावै मेरा मनावै ठोस्सा (ठेंगा)... जब पूरी उमर काट दी थोड़े से दिन बचे हैं... जा कै बालकां के बाप नै मुंह तो दिखा सकूंगी... कुंए जोहड़ मैं पड़ै हवा सिंह..."

पहलवान तो था ही बिमला के फैसले में उसके साथ।

बीसों साल बाद इस घर की दहलीज और छत, दीवारों को यह रौनक और खुशियां नसीब हुई थीं। पहलवान का पूरा कुनबा भाती बनकर आया हुआ था। बिमला की सभी भाभियां, चाची-ताई, भाई-भतीजे, चाचा-ताऊ और तो और मामा भी आए हुए थे। मगर आज सुबह से ही बिमला को सब धुंधला सा नजर आ रहा था। सारी रौनक नम आंखों में तैर, डूब-उतरा आ रही थी। आंखें हैं कि बरसे जा रही हैं। अट्ठारह बरस पहले के सब दृश्य कलेजे में टक्कर मार रहे हैं। सब होकर भी कमी खल रही है कितनी तरह की। कितनी तरह की हूक उसके भीतरले में उठ रही है, वही जानती है।

छोटा लड़का रिश्तेदारों और दोस्तों के साथ बड़े-बड़े कड़ाहे पतीले मंजवा रहा है। अन्य भाई भतीजे काम संभाले हुए हैं। शामियाना तान देने से लेकर खाट पलंग हुक्के दुरुस्त

करने से लेकर गली साफ-सुथरी करना, शामियाने के रस्से चौबारों, खंभों, पेड़ों से जकड़ जोड़कर बांधने इत्यादि के काम।

यूं अखाड़े के नए पुराने पहलवान भी उस्ताद का साथ देने के लिए आए हुए थे। कईयों ने गली में मोर्चा संभाला हुआ था। घूम रहे थे, टहल रहे थे। मगर यह घूमना टहलना भी शक्ति प्रदर्शन का ही एक रूप है। इस बात को सभी जानते थे।

इधर बिमला की भाभी, चाची हल्दी मेहंदी से लेकर बंदनवार बनाना, चौक पूरना, लत्ते-कपड़े संभालना और न जाने क्या-क्या, सारे कामों में लगी हुई थीं।

पहलवान ने बहुत सुबह ही हनुमान जी की पूजा संपन्न की। अपने सफ़ेद कुर्ते पजामे में आज बदलाव किया। आज गुलाबी कुर्ता पहना। लोग देख रहे थे कि बहुत गबरू जवान देव पुरुष सा पहलवान अपनी खास लाठी लिए बैठक चौबारा आंगन, गली सब जगह प्रकट हो और लुप्त हो रहा था। एक जगह नज़र आता, तुरंत दूसरी जगह दिखाई देता। किसी को कुछ कहना बताना नहीं पड़ रहा था। सबने अपना-अपना मोर्चा संभाला हुआ था। पहलवान, उम्र चालीस पार मगर जवानों से भी ज्यादा जवान। ऐसे तैयार तत्पर जैसे दंगल के लिए वार्म अप कर रहा है।

दोपहर जीमनवार शुरू हो गई।

लड्डू-जलेबी, पूरी-सब्जी पेठा, बेसन खोये को कई रंग देकर, कई रंगों की सतमेल मिठाई। जीमनवार चल रही है, कि भात लेने का बुलावा आ गया। बिमला साधारण कपड़ों में है मगर भात लेने के लिए उसने पीलिया ओढ़ा है। पीलिया, बच्चा पैदा होने पर पीहर से आने वाला गोटेदार लूगड़ी चुन्नी का भव्य रूप होता है। पीलिया ओढ़े आरती की थाली लिए सूरत सिंह के कुनबे की औरतों लड़कियों के साथ वह अपनी चौखट पर खड़ी है। आटे और हल्दी से रंगोली बनाकर पटरा रख दिया गया है। चौखट पर बंदनवार, आम पीपल और केले के पत्तों का तोरणद्वार बना सजा हुआ है। सामूहिक स्वरों में स्त्रियां गीत गा रही हैं। बिमला के परिवार वाले, जो पहले बगल के प्लॉट में ठहरे हुए थे अब गली में खड़े हुए हैं। एक-एक कर भाती (पीहर वाले) पटड़े पर चढ़े। भाई, भतीजे, भाभी सब। बिमला हल्दी चावल का टीका करती। उनके सिर के ऊपर से गली में डॉभ (दूब) फैंकती जिसका सिरा गुंधे हुए आटे से मढ़ा होता। यह बलाएं बाहर, दूर फेंकने का शगुन होता है। एक-एक कर सबको इस नेग-शगुन, टीका लगवाना, बलाएं उतारने से गुजरना था। गीत गाए ही जा रहे थे। गली में ढोल भी बज रहे थे। बिमला की आंखें बार-बार भर आ रही थीं। और सबके बाद पहलवान पटड़े चढ़ा। जैसे सारे संघर्ष, सारी उम्मीदें, सारे सपने पटड़े चढ़े, परवान चढ़े। दोनों भाई बहन की डबडबाई आंखें मिलीं। आंखें नीर-सजल। पहलवान की आंखों में

लाली भी थी। पहलवान पटड़े पर खड़ा सबसे ऊंचा। बिमला ने बलाएं उतारने को डाभ फैंकी, टीका लगाया, आरता किया।

दोनों की आंखें मिलीं। जन्मभर का विश्वास तैर गया। सुबकी बंध गई बिमला की। पहलवान सांस रोककर अपनी भावनाओं को रोक रहा था। चेहरा लाल सुर्ख। जैसे आपा, कलेजा बाहर आने से रोक रहा हो। दोनों की एक सी गति। सब देख रहे हैं। बिमला रोई पहलवान भी फूट पड़ा। बिमला की हिचकियां बंध गई। जैसे गिर ही पड़ेगी। धारधार आंसू चल पड़े। जैसे बांध टूट गया हो। पहलवान ने भर्राई आवाज़ में रूंधे गले से कहा-

"बावली! मैं हूं ना !"

उसके सिर पर हाथ रखा। बिमला ने थाली एक भाभी को दे दी। और भाई से लिपटकर जो रोई। औरतों के गीतों में हिचकियां घुल गई। सब रो रहे थे। खुद आंसुओं पर काबू नहीं कर पा रही औरतें समझा रही थीं-

"ऐ बिमला क्यूं सोण-सामण रोवै है ?

"बावली हो री सै के ?

"ऐ तेरे भाई भतीजे घर कुणबा तेरे साथ सै... तू क्यां नै खाई..?

"ऐसा भाई तो रामजी सबनै देवै..!"

"हां री सारी सारी उम्र गला दी तेरा घर संवारण खात्तर... बालक पाल दिये... घर धरती सब क्यांही तै मजबूत कर दी... जीजी क्यूं जी माड़ा करै है...?

कमोबेश इसी तरह की बातें मर्दों में भी हो रही थीं। ऐसी बातें सुनकर पहलवान का परिवार गर्व से भर गया। बाप पगड़ी के छोर से आंखें पोंछ रहा था। बहन भाई सुन रहे थे और हिलक रहे थे। वहां मौजूद घराती-भाती इस दृश्य को मिसाल के तौर पर अपने मानस पटल पर अंकित कर रहे थे। बच्चे कुतूहल की तरह देख रहे थे।

बैठक में कई भारी पलंगों और आंगन में खाट पीढ़ी मूढ़ों पर लोग बैठ गए थे। बैठक में लोग जमने लगे थे। सनी के भारी-भरकम पलंग पर पहलवान के पिता बैठे थे, सजल गर्वीले।

साथ में भाई बंधु और आसपास के, इस गांव के लोग, सूरत सिंह के अन्य कुटुंबजन। सबके बीच पहलवान के पिता चाह कर भी अपनी पनियाई आंखों को रोक नहीं पा रहे थे। मगर चेहरे पर गर्वीली चमक भी थी। पहलवान की कुर्बानी ने उनका जीवन सार्थक कर दिया था।

लोग बातचीत का सिरा खोज रहे थे। सूरत सिंह के एक ताऊ ने हीं मौन तोड़ा-

"चौ... स्साब न्यू कहावत है के बहण के घर भाई कुत्ता होवै सै... अर न्यूं भी के भींत मैं आला और घर मैं साला सदा दुख देवै है... पर पहलवान नै तो ये सारी बात, कहावत

पलट दी" "सारी जवानी गला दी है बहाण का घर बसाण बचावण खात्तर और भाणजे पाल कै जवान कर दिए वो अलग..." इस ताऊ की बात में एक चाचा ने बात मिलाई।

"चोस्साब म्हारा सारा गांम न्यू कहवै है अगर पहलवान ना होता ना तो के ये बालक पलै थे... हवा सिंह की चालती तो बालकां की रेह-रेह माटी कर देत्ता..."

"हां भाई ! जमाना बदल गया है ईब कित निभै सै इसे वचन, इसे रिवाज...? या तै मरद नैं ना लुगाई नै तो मरणा ही पड़ै है बेआई..." एक अन्य आदमी ने भी बात में बात जोड़ कर सामाजिक होने का सुबूत दिया।

"हूं... हूं..." भर आ रहे गले को साफ कर पहलवान के पिता ने भी बोलना चाहा। बमुश्किल जोड़-तोड़ कर बोल पाए-

"कहो तो ठीक हो चौस्साब पर जब जेठ-देवर भेड़िए हो जावै हैं ना तो कुत्ते का ही सहारा होया करै है... और यो तै बखत नै फैसला कर ही दिया है कि कौण कुत्ता है और कौण शेर... मन्ने मेरी छोरी और छोरे पै मान है, घमंड है... असली सच्चा पहलवान है मेरा बेटा… परमात्मा ने जो भाग में लिख दिया वो सब तै बड्डा दंगल जीता है मेरे बालक नै..."

सूरत सिंह के चाचा ताऊओं को खूब शर्म आ रही थी। हवा सिंह जैसा घटिया चरित्र अपने खानदान पर कलंक लग रहा था उनको। एक ताऊ बमुश्किल बोल पाया-

"हां चोस्साब ! कहो तो सब ठीक हो आप... न्यू तै म्हारा सारा कुणबा ठीक-ठाक है पर एक आध खराब भी हो ज्यावै है… हाथ की सारी उंगलियां एक सी ना होवतीं..."

इसके बाद सारी हवा, हवा सिंह के खिलाफ बहने लगी। हवा अब तूफान हुई जा रही थी।

सारे नेग शगुन हो चुके थे। सभी तैयारियां पूरी हो चुकी थीं। अब बारी थी बारात निकलने की। ढोल ताशे बज रहे थे।

और जब "सूरज सिंह सुपुत्र श्रीमती बिमला देवी एवं स्वर्गीय श्री सूरत सिंह" घुड़चढ़ी एवं बारात प्रस्थान को तैयार हुआ। लड़का बांका सजीला दूल्हा बना गीतों, दुआओं संग चौखट पर आया। घोड़ी सजी तैयार खड़ी थी। पहलवान की मज़बूत हथेली पर पैर धरकर, बलिष्ट कंधे को थामकर लड़का घोड़ी चढ़ा दिया। जिन्होंने देखा था उनको वह एकदम सूरत सिंह लग रहा था। आंखें नम थीं। एक औरत ने बिमला और दूसरियों से कहा-

"ऐ ऽऽ ऐसा लग रहया है जणूं सुरते दुबारै घोड़ी चढ़ा है..."

"कती बाप जैसा लग रहया है..."

"ले जीजी मामा नै घोड़ी चढ़ा... ऐसे मामा और भाई भतीजे सबनै देवै रामजी..."

औरतें गीत गाने लगीं। ढोल ताशे भी बजने लगे। बच्चे तो मस्त थे ही मगर बड़ों में पहल कौन करे ?

"अरै ऽऽऽ रै...यो तै कती चाला पाट गया..."

पहलवान कूद पड़ा। गांव घर सब हैरान। इतने सालों में लोगों ने देखा ही नहीं था कि पहलवान ने कभी नाच-तमाशा, रंग-चाव, शौक करना तो दूर कभी दिलचस्पी भी दिखाई हो तो। लेकिन पहलवान तो पूरी ताकत और मस्ती से झूमता हुआ नाच उठा। गोल दायरा बन गया। पहलवान के भाई-भतीजे, पुराने दोस्त, चेले चपाटे सब चाक-चौबंद। बारात चढ़ती है तो उत्साह, वीरता, पराक्रम, त्याग, बलिदान के भावों में ढल जाता है। और यहां तो दुश्मन की छाती पर जैसे कूद रहा है पहलवान। अदृश्य अनाम बुरी शक्तियों के प्रतिरोध में स्त्रियां मंगलाचरण करतीं तो पुरुष प्रत्यक्ष शत्रुओं, बाटीदार, पाटीदार बैरी, दुश्मनों के लिए योद्धा भाव से तत्पर। बहनापा भाईचारा चरम पर होता है। यहां भी वैसा ही ताव तेवर था। उत्साह, उमंग, चाव, कर्तव्य सब जोर मार रहे थे। सबकी नजरों का केंद्र पहलवान। सबके सुख और आनंद का आधार पहलवान।

और पहलवान अपनी बलिष्ठ, भारी झूलती-झमकती देह लिये कूद ही पड़ा।

नाचने लगा था। मगर नाच में तो लय, ताल, लचक, गति, अंतराल के अनुसार तान के हिसाब से थिरकना होता है। मगर ऐसा कुछ नहीं। पहलवान बस कूद रहा था। गेंद की तरह उछल रहा था। रो रहा था। आंसुओं से भीगा चेहरा लाल सुर्ख हो रहा था।

ऊपर उछल कर नीचे पांव धरता तो जैसे धरती को दबा देना चाहता हो। पांव जैसे दुश्मन के सीने पर मार रहा हो। पहलवान पसीनम-पसीना भीग चुका था। गुलाबी कुर्ता देह से चिपककर निचुड़ रहा था। चेहरा, गर्दन, सीना सब सुर्ख जैसे लहू उतर आया हो। गली, छतों, छज्जों से लोग देख रहे थे, सराह रहे थे।

पहलवान कूदता रहा। देर तलक, दूर तलक। घराती सब तालियां बजाकर उत्साह बढ़ा रहे थे। साथ ही छोटे भाइयों के बालक भी कूद पड़े

"ओ ताऊ..!" कहकर। साथ में भाई भी आ गए। रंग जम गया। पूरे गांव का चक्कर लगा। पूरे गांव में पहलवान नाचता, कूदता रहा। गांव भर में भाई-बहन के स्नेह-त्याग, की चर्चा थी। पूरी चाक-चौबंद व्यवस्था, पहलवानों, जवानों, लठैतों के साथ घोड़ा गाड़ियों, ट्रैक्टर ट्रॉली में बारात निकली।

दुल्हन लेकर बारात वापस। बारात गांव में दाखिल। जो भी कोई दूल्हे की मां को सबसे पहले जाकर संदेशा देता है कि बारात दुल्हन लेकर लौट आई है। उसे दूल्हे की मां लड्डू, मिठाई, नेग-शगुन इत्यादि देती है, और खूब-खूब आशीर्वाद भी। जब बारात मंथर गति से ट्राली, तांगे में गांव की सीमा में आ गई तो पहलवान ने अपने छोटे भाई के बेटे को पास बुलाकर कान में समझाया। बारह-चौदह साल का यह गदडू सा तगड़ा लड़का चलते तांगे से कूदकर गांव की गलियों में दौड़ता चला गया। लड़का सांसम-सांस घर में घुसा

"बुआ बरात आ गई... सूरज भाई की चांद सी बहू लाए हैं..."

बिमला निहाल हो गई। भतीजे को गले से लगा लिया। पीछे-पीछे पहलवान भी दुलकी चाल से चला आ रहा था। बहन भाई की नजरें मिलीं। सुबह की शबनम आंखों से फिसल गई।

बिमला और घर की औरतों ने आरती उतारकर दुल्हन को गृह प्रवेश करवाया। सभी तरह की रस्में पूरी हुईं। दही धाम, सोंटा-सोंटी, दूल्हा-दुल्हन को पित्तरों के स्थान पर खेत में सूरत सिंह की समाधि पर धोक लगवाई गई।

नाश्ता खाना होते दिन चढ़ने लगा था। बिमला का पूरा पीहर वापसी को तैयार खड़ा था। सब पहलवान की बाट देख रहे थे। वह खेत संभालने गया हुआ था।

पहलवान खेतों से लौट रहा था। बुढ़ा चुके रोहताश प्रधान और हवा सिंह चौपाल के पास बैठे हुए बतला रहे थे। हालांकि न अब रोहताश, प्रधान रह गया था। न अब हवा सिंह की हवा में जोर था। रस्सी जल गई थी मगर बल नहीं गया था। पहलवान को देखकर बातों का विषय बदल दिया।

"रै हवा सिंह ! भाई थारे रिस्तेदार नै तो चाला कर दिया... अपना बसाया ना पर भाणजे का बसा दिया..."

"प्रधान जी ! के जरूरत अपणा बसावण की..? ईब तो नई बोहड़िया (दुल्हन) आ गई है... उसी पै सेवा लेवेगा..." फिर संयुक्त ठहाका

"ठीक कहवै है हवा सिंह ! पर कुंवारे और ब्रह्मचारी मैं अंतर तो होत्ता होवेगा कुछ...? अरै सुण तो ना ली? चला ही आवै है जमदूत सा..."

हवा उधर की ही थी। इस कारण इन दोनों के न चाहते हुए पहलवान ने सुन ही लिया। या पता नहीं उन्होंने सुनाकर ही कहा हो।

इतने सालों तक इस गांव की चुप्पी और सरसराहट को घोंट कर पीया है पहलवान ने। ये शब्द भी हवा पर सवार होकर चले आए कानों में। मगर कानों में ही न रहे। सीधे कलेजे में उतर गए। आत्मा में पैठ गए। पहलवान दंगल जीत चुका था। अब बातें कहने का कोई अर्थ नहीं रह गया था। प्रण सा करके चला आया। आकर देखा आंगन में रौनक, चहल-पहल। बरामदे में लाल जोड़ा पहने दुल्हन पीढ़े पर बैठी लड़कियों से घिरी हुई थी। मोहल्ले की औरतें मुंह दिखाई की रस्म के लिए आ जा रही थीं। छोटा भांजा हलवाई का सामान संभलवा रहा था। बड़े वाला छत पर रिश्तेदारों के साथ हंसी मजाक कर रहा था। दूल्हे वाला ही वेश। क्रीम रंग की पैंट-शर्ट, गुलाबी पटका। हंसता-खेलता गबरू जवान। पहलवान को लगा जैसे यह दृश्य वह बहुत पहले भी देख चुका है। तेईस साल पहले जब बहन को लिवाने लाया था, और जीजा सूरत सिंह ज्यों का त्यों चौबारे चढ़ा हुआ था। सारे दृश्य को जी भर

देखा। पीर-फकीरों का शुकराना किया। आसमान की तरफ देखा। आंखें पोंछी और होदी की तरफ। मुंह धो कर आया तो सब तैयार खड़े थे।

"अच्छा बेटी हम तो चलैं"

"ठीक है बेबे चलैं !

"बुआ जावैं हैं हम..!"

पिता, चाचा, ताऊ, भाई, भतीजे सब तैयार। बिमला का जी भर आया।

"ठीक है बेबे ! मैं भी चलूं ईब... संभाल घर अपण..."

पहलवान के कहते ही धमाका सा हुआ। घर वालों के साथ-साथ बिमला का कलेजा भी धक से रह गया। रो ही पड़ी। गले लग गई। हिचकियां लेकर बमुश्किल बोली-

"के भाई...? कोई गलती बण गी मेरे पै या बालकां पै...?

"ना बावली ! कोई गलती ना... पर ईब बेड़ा पार हो लिया... तेरी नाव किनारे लग ली है... बजरंगबली तै जो नेम वचन दिया था, पूरा होया... ईब जाणा तो पड़ेगा... तू मौज मै रह..."

रोना मच गया। समझाना-बुझाना सब व्यर्थ। न पहलवान जाने की वजह बताए और न रुके रहने के तर्कों से हारे।

बहन बेटी की तरह पहलवान विदा हुआ। सारा पड़ोस उमड़ पड़ा मिलने देखने। साथी किसान भी भेंटने आए। और भरे-भारी मन से पहलवान को विदा किया गया।

अगले दिनों नई दुल्हन ने घर संभाल लिया। बिमला बैठक में पहलवान वाली जगह सनी के भारी भरकम पलंग पर। छोटा लड़का भी वहीं और पहलवान की वह साधी हुई लाठी भी वहीं बैठक में, और भीतर का घर-आंगन बड़े बेटे और बहू के क्षेत्र।

अगले दिनों गांव भर में खबर थी कि

"भाई पहलवान नै यो घर के छोड्डा वो तो अपणे गाम, अपणे घर भी नहीं गया..."

"तो फेर...?

"फेर वो अपणे खेतां मैं अपणे ट्यूबैल पै गया सीधा... वहीं रह गया... वहां ही रहवै वहां ही पकावै-खावे... साधु बाबा बण गया...

और कुछ समय बाद। जब देश में पहले एशियाई खेल हुए। तब पहलवानों ने दमख़म दिखाया। और पहलवान ने वहीं ट्यूबेल पर बनी अपनी कुटिया में अपना शरीर पूरा किया।

फोन न. : 9650407519

इक्कीसवीं सदी की स्त्री : भारतीयता की पोषक या विनाशक?

डॉ. आशा मिश्रा 'मुक्ता'

मातृ और पितृसत्ता के बीच पिसती हुई स्त्री 21वीं सदी तक पहुँच चुकी है जहाँ आधुनिकतावाद, स्वतंत्रता, स्वच्छंदता के साथ सभ्यता, संस्कृति और परम्परा का मुठभेड़ चल रहा है। पीढ़ियों के बीच जंग जारी है। ऐसा माना जा रहा है कि स्त्रियों की स्वच्छंदता और स्वतंत्रता भारतीय संस्कृति और सभ्यता का विनाशक है। इससे इतना तो साफ़ हो जाता है कि स्त्री ही सभ्यता और संस्कृति की पोशक है। अब बात यह है कि अबला कहलाने वाली स्त्री क्या सच में इतनी शक्तिशाली हो चुकी है कि अपनी वर्षों पुरानी संस्कृति को प्रभावित कर रही है? परंपरा तोड़ रही है और सभ्यता का विनाश कर रही है? हमारी सभ्यता या संस्कृति क्या इतनी कमजोर है कि आसानी से इसका हनन किया जा सके? इसके लिए हम पाश्चात्य सभ्यता को भी दोषी मानते हैं जिसका अनुकरण कर हम बर्बाद हो रहे हैं और समाज को नुक़सान पहुँचा रहे हैं। क्या पाश्चात्य सभ्यता में इतनी शक्ति है जो हमारी सदियों पुरानी सभ्यता का विनाश कर सके? आज की स्त्री क्या वाक़ई में स्वच्छंदता या स्वतंत्रता की सीमा तोड़ चुकी है जिससे समाज लज्जित हो रहा है? स्त्रियों की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए एक नजर प्राचीन काल में डालकर देखते हैं और पता लगाते हैं कि आज की स्त्री उनसे कितनी अलग है।

पीछे मुड़कर देखने पर वैदिक और पौराणिक काल की मातृसत्तात्मक शासन व्यवस्था नजर आती है जिसमें घर की मुखिया स्त्री होती थी। वह पूर्ण आत्मनिर्भर सम्पूर्ण कुटुम्ब का भरण पोषण करने का अधिकार रखती थी। 'वर' जिसे पति कहते हैं ये शब्द ही स्त्री की स्वायत्तता सिद्ध करने के लिए काफ़ी है। 'वर' शब्द का अर्थ 'चुना गया' और चुनने वाला होता है पर संस्कृत भाषा में इसका स्त्रीलिंग नहीं है। अतः यह साफ़ है कि यह शब्द लड़कों के लिए ही प्रयोग में लाया जाता था। लड़की के लिए स्वयंवरा या पतिंवरा शब्द है। स्त्री

अपना पति चुनकर उसे अपनी इच्छानुसार अपने पास रख सकती थी। स्वतंत्रता की बात करें तो उस युग में भी पुत्री के गुणों को देखते हुए सुवर्चला और सावित्री के पिता ने उन्हें स्वयं वर चयन करने की अनुमति दी और श्वेतकेतु एवं सत्यवान से विवाह करने दिया। परंतु आज की बात करें और नज़र दौड़ा कर देखें तो आज के तथाकथित अत्याधुनिक युग में भी सत्तर प्रतिशत ऐसे पिता हैं जो विवाह के लिए पुत्री को स्वतंत्रता देना तो दूर उनकी मर्ज़ी तक नहीं पूछते। उसकी इच्छा को लोक-लाज और इज्जत की वेदी में दफ़न कर दिया जाता है।

ऋग्वेद तथा अन्य वैदिक ग्रंथों में स्त्रियों का उल्लेख ऋषि के रूप में किया गया है। ऋषि वह स्त्री कहलाती थी जो मंत्रों से पूर्णतः रूबरू हो और अपनी सक्रियता से समाज में सार्थक हस्तक्षेप करनेके लिए स्वतंत्र हो। लोपामुद्रा, अपाला तथा घोषा को महिला ऋषि माना गया है। ऋग्वेद में मंत्रों की रचनाकार कवि के रूप में इनका उल्लेख किया गया है। इसके पंचम मंडल में आत्रेय ऋषियों के मंत्र के साथ अपाला तथा विश्वारा के मंत्र भी समाहृत हैं। इन महिला ऋषियों ने अपनी रचनाशीलता के बल पर न सिर्फ़ ऋषि की मान्यता हासिल कीं बल्कि ब्रह्मवादिनी भी हुईं। ब्रह्मवादिनी उन बुद्धिजीवी महिला को कहा जाता था जो वाद विवाद में खुली बहस कर सके, शास्त्रों की रचना कर सके और धर्मोपदेश दे सके। कौषीतकि ब्राह्मण में बताया गया है कि वेद में पारंगत स्त्रियों को 'पथ्यस्वस्ति वाक्' की उपाधि से सम्मानित किया जाता था। उत्तर-वैदिक काल में भी स्त्रियाँ पूर्ण स्वतंत्र और अपनी इच्छानुसार जीवन शैली जीने वाली हुई हैं। काशकृत्स्ना मीमांसा दर्शन की आचार्य थीं। उपनिषदों में गार्गी, मैत्रेयी, कात्यायनी और सुवर्चला आदि महिलाओं का ज़िक्र है जिन्होंने अपनी जीवनशैली स्वयं चुना था। ब्रह्मवादिनी गार्गी उस समय के बुद्धिजीवियों के बीच अकेली याज्ञवल्क्य के साथ बहस कर उनके ब्रह्मज्ञान को चुनौती दी। मैत्रेयी ने घर-बार और अटूट संपदा को त्याग कर याज्ञवल्क्य के साथ जाने का निर्णय लिया था और कात्यायनी अपने पति को छोड़ उसी घर-बार और ऐश्वर्य में रमने का फ़ैसला किया। यज्ञों में पत्नी की सहभागिता अनिवार्य थी और वैदिक सीतायज्ञ तथा रुद्रयज्ञ जैसे यज्ञों का अनुष्ठान मात्र स्त्रियाँ ही करती थीं। अपनी पुरोहित वह स्वयं होती थीं और कर्मकांड भी स्वयं सम्पन्न करती थीं। ऋग्वेद की स्त्रियाँ स्वेच्छा से हथियार उठाकर युद्ध में शरीक होती रही हैं।

कैकेयी को चाहे कितना भी बदनाम कर लें पर सच्चाई यह है कि कैकेयी जैसी स्वाधीनता के मूल्य को सत्यापित करने वाली स्त्री अन्यत्र कम ही हुई हैं। वाल्मीकि के अनुसार दशरथ ने कैकेयी के साथ विवाह राज्यशुल्क देकर किया था, अर्थात् उन्होंने कैकेयी के पिता को वचन दिया था कि उनकी लड़की से यदि लड़का होगा तो अयोध्या का राजपद उसी को दिया जाएगा। परंतु दशरथ के मन में राम के प्रति मोह था और उन्होंने कैकेय राज

को बहला कर राम को राज्याभिषेक के लिए तैयार कर लिया। कैकेयी से अपने पुत्र के प्रति यह अन्याय बर्दाश्त नहीं हुआ और उसने दिए गए वचन का प्रयोग कर पुत्र को राजा बनाया। इसे चालाकी या मौका परस्ती नहीं बल्कि दशरथ को दिया गया दंड मात्र कहा जाएगा जो उनके ऐतिहासिक भूल के लिए मिली। वाल्मीकि की कथा में अहिल्या कोई पत्थर नहीं बल्कि जीती जागती स्त्री है। अहिल्या को इन्द्र से प्रेम था जो पति गौतम से बर्दाश्त नहीं हुआ और उन्होंने अपनी पत्नी को त्याग दिया। पति द्वारा छोड़े जाने पर भी अहल्या वर्षों अकेली रही। सीता भी कोई अबला नहीं थी। वनगमन के वक्त राम से वाद-विवाद कर स्वयं वन गई और पति की पथगामिनी बन पत्नीधर्म का निर्वाह की। अपहरण के वक्त रावण से जूझीं और अशोक वाटिका में उसे अपने पास फटकने नहीं दी। यही नहीं रावणवध के उपरांत राम के कटाक्ष को चुपचाप सहन न कर उनसे वाद और संवाद किया तथा पति द्वारा त्यागे जाने पर अकेले पुत्रों का लालन पालन कर योद्धा बनाई। मिन्नतों के बावजूद राम को क्षमा न कर राम के साथ रहने के बजाय स्वयं को पृथ्वी के सुपुर्द कर दिया। तारा, मंदोदरी और द्रौपदी जैसी सशक्त एवं दृढ़निश्चयी स्त्रियाँ अपने पतियों से वाद, विवाद और संवाद कर पति को सही राह दिखाने की कोशिश की हैं। द्रौपदी ने जुआ में हारे पति को अपनी बुद्धि वैभव से गुलामी से निजात दिलाया। अपने एक सवाल से महावीर भीष्म को निरुत्तर कर दिया। शकुन्तला ने दुष्यंत द्वारा स्वयं को भूले जाने पर उसके महल में जाकर खूब बहस किया और प्रण करके पुत्र को पिता का राज्य छीनने योग्य बनाया। मंदोदरी रावण को सीता को लौटा देने के लिए कहती है जो रावण नहीं मानता पर युद्ध में अपनी हार निकट देख वह संधि हेतु मंदोदरी से सलाह माँगता है। तब मंदोदरी उसे डपटती है और कहती है कि अब संधि करके कोई फ़ायदा नहीं यदि तुमसे यह नहीं होगा तो मैं तलवार उठाती हूँ। विपरीत परिस्थितियों में भी इन महिलाओं ने हिम्मत और दृढ़ निश्चयता का परिचय देने में विश्वास किया है न कि 'बिनती बहुत करों का स्वामी' की रट लगाती फिरी हैं। हमने इनकी स्त्री सुलभ सहनशीलता, धैर्य और कर्तव्यपारायणता के गुण को कमजोर बताकर अबला बनाया और सशक्त पक्ष को नज़रंदाज़ कर दिया। खुले विचार, वाक्चातुर्य और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और स्वच्छंदता की बात करें तो इसमें भी ऋग्वैदिक स्त्रियाँ पीछे नहीं रही हैं। उस वक्त भी महिलायें शारीरिक आवश्यकताओं को सहज और उन्मुक्त भाव से अभिव्यक्त करती थीं। स्त्रियों का दैहिक संसर्ग की कामना प्रकट करना तब भीबुरा नहीं माना गया। इस संबंध में लोपामुद्रा का पति अगस्त्य के साथ संवाद उल्लेखनीय है जब वह बूढ़े पति से कहती है कि "काया बुढ़ा जाए, फिर भी एक पति को कामना करती हुई पत्नी के पास आना चाहिए। (ऋग्वेद के पहले मंडल का 179वाँ सूक्त)"

जिस संस्कृति की हम बात करते हैं वह क्या ये नहीं है? आज कितनी स्त्रियाँ इनके बराबर पहुँच पाई हैं। आज भी अधिकतर स्त्रियाँ हर क्षेत्र में संघर्षरत हैं। अथक परिश्रम और व्यवस्था से संघर्ष कर जिसने विशेष मोकाम हासिल किया है उनपर तंज कसे जाते हैं। उनके रहन-सहन, बात-विचार पहनावा-ओढ़ावा यहाँ तक कि उसके सोच को भी कलुषित मानकर संस्कृति की दुहाई दी जाती है। स्त्रियों के लिए स्वाधीनता का ग़लत फ़ायदा उठाने की बात की जाती है। विकृत मानसिकता को जन्म देने के लिए भी महिलाओं के स्वच्छंद सोच को ज़िम्मेदार माना जाता है। यदि किसी ने बुरी नज़र से देखा तो उसकी नज़र में दोष नहीं बल्कि महिलाओं के परिधान में ख़राबी निकाली जाएगी। यदि स्त्री तलाक़ की शिकार होती है तो वह पत्नी धर्म के निर्वहन में असमर्थ है और यदि वह पति को त्यागती है तो चरित्रहीन कहलाती है। देह का व्यापार करती है तो वेश्या है और बलात्कार की शिकार होती है तो उसके उद्दाम और स्वच्छंद वर्ताव को दोषी माना जाता है।

सर्वगुणसम्पन्न स्त्री के व्यवहार और वर्चस्व को देखकर और अपना काम उसके वग़ैर न चलता देख मनु महाराज ने भी 'न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति' लिख कर पहले तो स्त्री को पराश्रित बनाया फिर बड़ी समझदारी से 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' कहकर उनकी, क्रोध, नाराज़गी और विद्रोह से पुरुष जाति को बचा लिया। फिर पुरुषों ने स्त्री को वह स्त्री बनाया जो मात्र उसकी सुख-सुविधा का ख़याल रख सके। प्रारम्भिक अवस्था में पारिवारिक अवधारणायें एवं आडम्बरों से रहित समाज को पितृसत्तात्मकता के साथबंद एवंकट्टरता की नींव डाली और तथाकथित सुरक्षित समाज का नाम दिया। देवी का स्वरूप देकर पहले तो उसे भ्रमित किया गया और अच्छी भली स्त्री को मूर्ति के रूप में गढ़कर उसके गुणों और अधिकारों को पाषाण में जड़ दिया गया। उसकी प्राण प्रतिष्ठा इस तरह से की गई कि वह खुद ही समझ नहीं पाई कि उसके साथ जो हो रहा है वह सही है या ग़लत। स्त्रियों की रही सही ताक़त इस्लामिक आक्रमणकारी एवं शासकों ने निचोड़ ली। न सिर्फ उनका शरीर बल्कि आत्मा को भी कालकोठरी में क़ैद कर रोशनी को उनके जीवन से सदा के लिए दूर कर दिया। देश, समाज और परिवार की इज्जत का बोझ उसपर लाद दिया गया और उसकी कोमलता का लाभ उठाते हुए उसे विवश किया गया कि यदि वह सिर उठाने की कोशिश करेगी तो उसका सिर शायद नहीं कटे परंतु समाज और परिवार का सिर लज्जा से सदा के लिए झुक जाएगा। स्त्री को दास बनाकर पुरुष मुखिया बना और उसे यह दासता गरिमापूर्ण लगे, इसके प्रति उसके मन में विद्रोह न हो इसलिए ममता, स्नेह, प्रेम, दायित्व, धर्म, कर्तव्य, शील आदि से उसे जोड़ दिया गया। शादी के लिए उम्र , शिक्षा और ज्ञान में पुरुष से स्त्री का कम होना अनिवार्य रखा गया ताकि उसपर शाषण करना आसान हो। सामाजिक, औपचारिक, नैतिक और धार्मिक शिक्षा देकर उसे स्त्री रूप में परिवर्तित किया गया तथा

धर्म और कर्तव्य के दायरे में इस तरह क़ैद किया गया कि पुरुष और परिवार को खुश रखना ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन गया। शायद इसलिए कहा गया है कि स्त्री पैदा नहीं होती है उसे बनाया जाता है।

हमारे ग्रंथकार और धर्मशास्त्रज्ञों ने स्त्री को मात्र दोष की खान बताया। साहित्य हो या इतिहास उसे वह स्थान नहीं दिया जिसकी योग्यता वह रखती है। यहाँ तक कि स्त्रियों को शूद्र की श्रेणी में डाल दिया। महादेवी वर्मा जैसी साहित्यकार को वेद पढ़ने के लिए इलाहाबाद के वेद के गुरुजी इसलिए मना किया कि वह एक लड़की थी और लड़की वेद का अध्ययन नहीं कर सकती। लिहाजा उनका संस्कृत का अध्ययन जारी नहीं रह पाया। विश्पला और रुशमा जैसी योद्धा नारियों या अपाला और गार्गी जैसी वेदज्ञ स्त्रियों के देश में स्त्री को वेद पढ़ने का निषेध कितना उचित है? विद्वान एवं आलोचकों का पूर्वग्रहित दिमाग यह मानने के लिए तैयार नहीं होता कि वैचारिक, तर्कपूर्ण और निर्णायक मत रखने की क्षमता स्त्रियाँ भी रखती हैं। बौद्धिक चर्चा तथा वाद विवाद में एक तो उन्हें शामिल नहीं किया जाता और अगर मजबूरन शामिल करना पड़े तो गृहसज्जा तक उनकी भूमिका को सीमित रखा जाता है। गृहनिर्माण में उनका उल्लेख नहीं किया जाता। लज्जा, धैर्य , सब्र, दया, माया, आदि गुण रखते हुए भी वीरता या पौरुषेय गुण जिनमें मर्द डींग मारे फिरता है और स्वयं को स्त्री से ऊपर रखता है उनमें भी ये पीछे नहीं रही है। चाँद सुल्तान, अहिल्याबाई, बैजाबाई, के साथ झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई जैसी स्त्रियाँ न सिर्फ़ रणबाँकुरी हुईं बल्कि राजनीति और नीति में भी अपनी योग्यता साबित की हैं। स्त्रियों को जब भी अवसर मिला है पुरुषों से बेहतर सिद्ध हुई हैं। पढ़ाई लिखाई हो या अन्य क्षेत्र कहीं भी वह पीछे नहीं है। इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता कि स्त्री धर्म और दया की मूर्ति होती है। वह धर्म की रक्षक भी है। हिंदू धर्म इन तथाकथित अबलाओं की दया पर ही टिकी हुई है। स्त्री की वास्तविक स्वरूप, उसका अस्तित्व, उसकी परंपरा, अतीत, स्मृति आदि से अवगत होना नई पीढ़ी का धर्म है। भूत से प्रेरणा लेकर भविष्य को सुधारा जा सकता है। इतिहास में भले ही स्त्रियों की शौर्य गाथा का बखान कम मिले पर पौराणिक स्त्रियाँ स्त्री की स्वाधीनता एवं स्वायत्तता का परिचय दिलाने के लिए काफ़ी है।

हम जानते हैं कि जब भी अवसर मिला है विभिन्न क्षेत्रों में महिलाएँ पुरुषों से बेहतर सिद्ध हुई हैं। वह अपनी ताक़त और सूझ बूझ से घर और बाहर सभी दायित्यों का निर्वहन आसानी से कर सकती है जो पुरुषों के लिए कठिन है। शायद यही असुरक्षा का बोध पुरुषों का स्त्रियों को उचित अवसर प्रदान करने से रोकती है। छोटी इकाई हो या बड़ी संस्था, प्रतिभा सम्पन्न होते हुए भी स्त्रियों को मुखिया चुनने में आज भी पुरुष अहम् को धक्का लगता है। उनके अंदर काम करना उन्हें गँवारा नहीं होता। फलस्वरूप स्त्री वर्षों एक पद पर

काम करती रहती है और उसके साथ काम करने वाले कहीं से कहीं पहुँच जाते हैं। उसके गुणों को सही दिशा देने के बजाय परंपरा, सभ्यता, संस्कृति, शील, अपमान आदि से जोड़कर उसकी प्रतिभा को ग्रहण लगा दिया जाता है। ऐसी कौन सी संस्कृति है जो अपने संवाहकों को परतंत्र बनाता हो। भारतीय संस्कृति का इतिहास तो ऐसा नहीं कहता।

हम जिन पाश्चात्य देशों से अपनी तुलना करते हैं और उनकी बुराई करते नहीं थकते उन देशों में समानता का यह हाल है कि स्त्री अपने प्रति दयादृष्टि को बर्दाश्त नहीं कर सकती। कई यूरोपीय देशों में पुरुषों के द्वारा स्त्री के लिए बस, ट्रेन या किसी भी सार्वजनिक स्थल पर स्थान ख़ाली करना उन्हें स्त्रीत्व की तौहीन लगती है। बराबरी में विशेषाधिकार को वे नहीं मानती। उन देशों में भी पहले स्त्रियों की हालत कोई बेहतर नहीं थी। काफ़ी जद्दोजहद के बाद इन्होंने अपनी आजादी और समानता का अधिकार कमाया है। सभ्यता और संस्कृति की दुहाई देते हुए हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठीं। हमारे अंदर की हीनता हमें स्वयं को कमजोर और पाश्चात्य सभ्यता को बेहतर मानकर उनपर अपना दोष मढ़ना चाहती है। जबकि सच्चाई यह है हम उनसे कहीं बेहतर और उन्नत सभ्यता से जुड़े हुए हैं। पौराणिक स्त्रियाँ एवं भारतीय सोच उनसे कहीं आगे है। हमारी हीन भावना ने उन्नति के पथ में रोड़ा अटकाने का काम किया है। पाश्चात्य सभ्यता से तुलना कर हम स्वयं को कमजोर सिद्ध करते हैं। इतनी तरक्की के बाद भी भारतमें कितनी महिलाएं प्राचीन स्त्रियों के बराबर खड़ी हो पाई हैं। आज स्त्री जमीन आसमान एक जरूर कर रही हैं परंतु नंबर अभी भी उंगलियों पर गिनी जा सकती हैं। सभ्यता और संस्कृति की दुहाई देकर स्त्री को कटघरे में खड़ा करना

उनकी तरक्की में बाधा डालना है। भारतीय स्त्री को अन्य सभ्यता का अनुकरण करने की आवश्यकता नहीं है। अपने पूर्वजों का अनुकरण कर ले उतना काफी है। स्त्री जननी है और जननी विनाशक नहीं हो सकती। भारतीय संस्कृति की आधार स्त्री है। संस्कृति के विनाश का जड़ इस आधार को कमजोर करना होगा न कि इसे सुदृढ़ करना। स्त्री आनुवंशिक रूप से संस्कृति की पोषक है न कि संहारक।

संदर्भ सूची :

राधावल्लभ त्रिपाठी,संस्कृत साहित्य में स्वाधीन स्त्रियाँ(हिदी समय(अनुराधा,हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन पर एक स्त्री के नोट्स (हिदी समय)

फ़ोन - 9908855400

ओमप्रकाश

डॉ. नरेन्द्र वाल्मीकि

30 जून 1950 को
मुज़फ्फरनगर के गाँव बरला में
पैदा होते ही बन गया
मैं एक विशेष वर्ग का बालक
लग गया ठप्पा चुहड़े और चमार का।
पढ़ने भेजा मुझे भी स्कूल
यहीं की थी मेरे पिता छोटन ने
व्यवस्था के खिलाफ एक भूल
जब तुमने मेरी इच्छाओं को दबाया
हेड मास्टर साहब
मैंने भी कर लिया प्रण तभी
मैं बनूंगा तुमसे भी बड़ा।
मेरी माँ ने जूठन ठुकराकर
दिया मुझे वो साहस
जिसे मैं बन पाया
बालक मुंशी से ओमप्रकाश।

मैंने जैसा जीवन जिया
उकेरा 'जूठन' में
'जूठन' ने फैलाया समूचे विश्व में
दलित साहित्य का प्रकाश
मैं हूँ सफाई कर्मचारियों पर
'सफाई देवता' लिखने वाला ओमप्रकाश।

आज मेरी रचनाओं ने खींच दी
उनके सामने एक बड़ी लकीर।
पढ़ते है उनके बच्चे भी
उनके पुरखों के
अमानवीय व्यवहार की कहानियां
मेरी किताबों में,
मैं हूँ दलित साहित्य का महानायक
ओमप्रकाश।

'बस्स! बहुत हो चुका',
'अब और नही'
'सदियों का सन्ताप'
'ठाकुर का कुँआ' ने कर दिया
व्यवस्था का पर्दाफाश
मैं 'घुसपैठिये'
'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र'
रचने वाला ओमप्रकाश।

17 नवम्बर 2013 को
देह छोड़ चली गयी संसार
मगर मेरे बच्चे 'नरेन्द्र'
व्यर्थ मत जाने देना
मेरा साहित्य भंडार
जाओ घर-घर फैलाओ इस साहित्य ज्ञानपुंज
को
बदलो उनके जीवन
जो जी रहे हैं, अभी तक बेकार
यदि बाबा के विचारों को पढ़ गये वे लोग
तो कोई कुरीति न फ़टकेगी उनके पास
मैं दलितों में ऊर्जा भरने वाला ओमप्रकाश।
ऐ मनुवादियों
हटा दो मेरी भावनाओं को शिक्षालयों से
कभी न कर पाओगे तुम

मेरे विचारों की लाश
मेरी साहित्यिक जाग्रति ने पैदा कर दिए है
असंख्य ओमप्रकाश।

मैं बोलूंगा

पवन धनौरी

तुम कहोगे तुम्हें नहीं बोलना चाहिए
तुम कहोगे तुम्हें बोलना नहीं आता
तुम कहोगे तुम्हें कौन सुनेगा
तुम कहोगे तुम्हारे बोलने से क्या होगा

लेकिन मैं बोलूंगा
मैं बोलूंगा
अपने हक के लिए
दूर करने शक के लिए
दिल की धक धक के लिए

मैं बोलूंगा
बांझ होती कूख के लिए
नहीं मिटती भूख के लिए
रोज़ कटते रूख के लिए

मैं बोलूंगा
अपने गांव के लिए
फसल के भाव के लिए
राजनीति दांव के लिए

मैं बोलूंगा
नफ़रत की खड़ी दीवार के लिए
धर्मों में खिंची तलवार के लिए
लालच में बंटे परिवार के लिए

मैं बोलूंगा
किसानों की हत्या के लिए
मजदूरों की समस्या के लिए
मजबूर हुई सत्या के लिए

खनन

आज फिर एक हादसा हुआ
हादसे का शिकार एक पहाड़
और कुछ मजदूर वो मजदूर
जो पेट की आग बुझाने को उतरे
मैदान-ए-जंग में
मालिक का हुक्म मान भंग डाल रहे थे
पहाड़ की मस्ती के रंग में
मस्ती भंग हुई पहाड़ की
नहीं रहा खुद पर काबू
वो गुस्से में आया
गिर पड़ा होकर बेकाबू
खुद तो मर रहा था
साथ में मरे मजदूर
खनन माफिया नज़र रखे था
बैठा कहीं दूर
हादसा देख माफिया भागा
किसी को बचाने
नहीं नहीं
लाशों को ठिकाने लगाने।

कला किसी की बपौती नहीं है

राजकिशन नैन से अशोक बैरागी की बातचीत

एक जमाने में 'धर्मयुग', 'सारिका', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान', 'कादम्बिनी', 'रविवार' और 'मनोरमा' जैसी सुविख्यात पत्रिकाओं में राजकिशन नैन के सचित्र लेख और फोटो फीचर वर्षों तक निरंतर प्रकाशित हुए हैं। देहाती धरा की ऊष्मा से लेखक व छायाकार बने राजकिशन नैन के चित्र गँवई माटी की रागात्मक चेतना से आप्लावित हैं। रचनात्मक जिजीविषा के सहारे इनने सृजनकर्म का अर्धशतक लगाया है। गाँव की भाषा, संस्कृति, रहन-सहन और कृषि संस्कृति की जड़े इनके भीतर में बहुत गहरे तक समाई हुई हैं। देहाती होने के नाते इनने अपना जीवन एक तपस्वी और कर्मयोगी की तरह जीया है। अपने लेखन और छायांकन संबंधी सपनों को पूरा होते देखने की खातिर इनने वर्षों तक कड़ी मशक्कत की है। गाँव की नैसर्गिक संपदा से ओतप्रोत इनके अधिकांश चित्र लोग-बाग, पशु-पखेरू, बाग-बगीचों, खेत-खलिहान और पर्व-त्यौहार से जुड़े हैं। इनके खूबसूरत चित्र देखकर हर कोई आह्लाद से भर उठता है। इनकी यायावरी, लगन, शौक और हुनर ने इनकी चित्र संपदा को कालजयी बनाया है। यहाँ प्रस्तुत है, आत्मीयता और स्नेहभरे माहौल में उनकी फोटोग्राफी कला पर हुई बातचीत के संपादित अंश। - अशोक बैरागी

अशोक बैरागी - आदरणीय नैन साहब, गाँव-देहात और उसकी संस्कृति से जुड़े अनगिनत चित्र आपने खींचे हैं। एक सुन्दर चित्र को आप कैसे परिभाषित करेंगे?

राजकिशन नैन - प्रकृति की गोद में बसे गँवई-गाँव के मनभावन सौंदर्य में जो अपूर्व कशिश है, उसे लाख चाहकर भी कैमरे की परिधि में नहीं लाया जा सकता। गँवई चित्रों में जो अनुपम लयात्मकता है, उसे शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता। पर चूँकि बचपन से ही गाँव मेरे उपास्य रहे हैं, इसलिए मेरे चित्र वहीं की आँचलिक गरिमा को दर्शाते हैं। सुंदर चित्र को हमारे जीवन की तरह विराट और जीवंत होना चाहिए। सौंदर्य संगीत की तरह अनिर्वचनीय अनुभूति है, जो हमें अलौकिक आनंद के करीब लाती है। फलत: ग्रामगंध से पगे और गँवई अस्मिता की अपूर्व अनुगूँज से युक्त अपने चित्रों को मैं ग्रामाँचलों का कोश या इनसाइक्लोपीडिया कह सकता हूँ।

अशोक बैरागी - आप गाँव से होकर भी कला के इस मुकाम तक कैसे पहुँचे?

राजकिशन नैन - कला किसी की बपौती नहीं है। अपनी मेहनत और अभ्यास के बूते पर गाँव या शहर का कोई भी व्यक्ति कला के काम में पारंगत हो सकता है। छायांकन कला के प्रति गहन अभिरुचि, घुमक्कड़ी का चाव और देहाती दुनिया का अद्भुत, अनखुला और अनचिह्ना आकर्षण मुझे यहाँ तक खींच लाया है।

अशोक बैरागी - नैन साहिब, आपके श्रेष्ठ चित्र किन विषयों से संबंधित हैं?

राजकिशन नैन - ओ...हो...! अशोक भाई, विषयों की मत पूछिए। इनकी गणना नहीं की जा सकती। प्रकृति और मानव द्वारा निर्मित ग्रामीण परिवेश की चीजों को मैंने अपने कैमरे के जरिये पकड़ने का प्रयास किया है। अलबत्ता देश के देहाती अंचलों से जुड़े चित्रों में जो आकर्षण है, वह अविस्मरणीय है। देहाती पृष्ठभूमि से जुड़े मेरे चित्रों में मुझे ताजे जुते खेत की सी महक आती है।

अशोक बैरागी - गाँव में शुरू-शुरू में आपने किन विषय के चित्रों पर हाथ आजमाया?

नैन साहब - (जोर का ठहाका लगाकर बोले) जहाँ तक मुझे याद पड़ता है कि अपना पहला चित्र मैंने गाँव की एक पनिहारी का खींचा था, जो हमारे गाँव के बूढ़े कुएँ के पारछे में खड़ी हुई डोल से पानी खींच रही थी। तदुपरांत मैंने एक ग्वाले का चित्र खींचा था, जो गाय का दूध दुहने के बाद बछड़े को उसकी माँ के थन चुँघा रहा था। उन्हीं दिनों मैंने हमारे गाँव के रौळी सरोवर में भैंस की पूँछ पकड़कर तैरते हुए कुछ बच्चों के चित्र भी खींचे थे।

अशोक बैरागी - आपने जीवन में पहली बार कैमरा कब पकड़ा? वह कौन-सा कैमरा था?

नैन साहब - सन् 1971 ईस्वी के जून माह में मैंने कैमरा पकड़ा। तब मैंने शिमला स्थित तारादेवी नामक जगह को बेस बनाकर पहाड़ी परिवेश के चित्र खींचे थे। कैमरा क्लिकथर्ड था

अशोक बैरागी - आपने अपने हाथों से पहली फिल्म कब डिवेलप की थी ?

नैन साहब - सन् 1975 मैंने घर में डार्करूम बनाया और उन्हीं दिनों अपनी फिल्में खुद धोनी शुरू की थी।

अशोक बैरागी - फोटोग्राफी के लिए कैमरे का भी अपना महत्व है। आपको सबसे अच्छा कैमरा कौन-सा लगा ?

नैन साहब - मैंने बॉक्स कैमरों के अलावा रौलीकार्ड, रौलीफ्लेक्स, कैनन, कोडक, निकॉन, असाई पेंटेक्स और याशिका आदि कैमरों से वर्षों काम किया है। पर कैनन पर मेरा भरोसा सबसे ज्यादा है। अलबत्ता मैंने क्लिकथर्ड और एग्फा आइसोली-2 सरीखे साधारण कैमरों से भी कई प्राइज विनिंग फोटो खींची हैं।

अशोक बैरागी - सर, सस्ते कैमरों की बजाए महंगे कैमरे से खींचे गए चित्र कलात्मकता या गुणवत्ता की दृष्टि से क्या ज्यादा उपयोगी होते हैं?

नैन साहब - जाहिर है कि महंगे कैमरों के लैंस की गुणवत्ता बहुत ऊँचे स्तर की होती है। तकनीकी दृष्टि से भी अच्छे कैमरे सस्ते कैमरों की अपेक्षा हमेशा ज्यादा कारगर होते हैं। विश्व की किसी भी अच्छी कंपनी के बड़े कैमरे से खींची अच्छी फोटो छोटे कैमरों की तुलना में ज्यादा कलात्मक और उपयोगी होती है। बशर्ते चित्र खींचने वाले को भी फोटोग्राफी कला की व्यापक समझ हो। यद्यपि मैंने फोटोग्राफी का ज्यादा काम सदैव

साधारण कैमरों से ही किया है। हुनरमंद आदमी चाहे तो अपने कौशल के बूते पर छोटे कैमरों से भी काफी बढ़िया फोटो खींच सकता है।

अशोक बैरागी - किसी भी चित्र में पृष्ठभूमि को आप कितना महत्व देते हैं ?

नैन साहब - पृष्ठभूमि यानी बैकग्राउंड उतनी ही महत्वपूर्ण है, जितनी खुद विषय वस्तु। यदि मुझे चित्र के लिए अच्छा विषय मिल रहा है लेकिन बेहतर पृष्ठभूमि उपलब्ध नहीं है तो मैं उस विषय को छोड़ देता हूँ। अच्छी पृष्ठभूमि फोटो की खूबसूरती को कई गुणा बढ़ा देती है।

अशोक बैरागी - सुंदर चित्र खींचने के लिए किस तरह के कौशल की जरूरत पड़ती है?

नैन साहब - सच बात तो यह है कि अच्छे चित्र के लिए प्रकाश और छाया के अंतर को समझने और उनके अनुरूप खास अवसरों को पकड़ने का सतत अभ्यास करना पड़ता है। विद्या और हुनर की तरह फोटोकारी की कला भी संयोग, लगन और धैर्य से हमारे जेहन में आती है। जबकि जल्दबाजी से बना बनाया काम बिगड़ता है। हर क्षण मौके की तलाश में रहने के साथ-साथ अपने आसपास के परिवेश और पृष्ठभूमि को सूक्ष्मता से निहारना पड़ता है, तब जाकर बड़ी देर से कोई ठीक-सा चित्र हाथ लगता है। और हाँ, जब तक चित्र खींचने वाले का मन चित्र के साथ एकाकार नहीं होता, तब तक मैं उसकी कला के हर प्रयास को अधूरा मानता हूँ।

अशोक बैरागी - एक कुशल छायाकार को अच्छे चित्र पकड़ने के लिए कितना तप करना पड़ता है?

नैन साहब - अच्छा चित्र खींचना खाला जी का घर नहीं है। इसके लिए हमें जोखिम उठाने और जोखिम सहने की आदत डालनी पड़ती है। अच्छा छायाकार तो प्रयास करने पर कोई भी बन सकता है पर जो फोटों की कमियों को दूर करके उन्हें अच्छे से अच्छा बनाने की फिराक में रहता है और अपनी लगन से काम करता है, सफलता उसी के चरण चूमती है। कला की देवी कलाकार के माथे पर उभरे पसीने की बूँदों पर रीझती आई है। इसके लिए तकनीकी ज्ञान के साथ-साथ देश के विविध अंचलों में निरंतर घूमने और खोजपरक निगाहों से प्रकृति के चप्पे-चप्पे की पड़ताल करनी पड़ती है। अच्छे चित्रों की टोह में भटकने वालों के लिए घुमक्कड़ी का काम किसी वरदान से कम नहीं है।

अशोक बैरागी - गाँवों का छायांकन अन्य छायाकारों द्वारा अब तक बड़े स्तर पर क्यों नहीं किया गया?

नैन साहब - असल बात यह है कि शहर के ज्यादातर छायाकार शुरू से ही पाश्चात्य रीति-नीति का अंधानुकरण करते आए हैं। उन्हें गाँव में गंदगी, बीमारियाँ और पिछड़ापन

नजर आता है। इसलिए वे गाँवों का रुख न करके पिटी-पिटाई लीक पर चलकर काम चला रहे हैं। गँवई लोगों के प्रति मैंने उनमें श्रद्धा का भाव कम देखा है। एकाध अपवाद के सिवाए गाँवों को ठिकाना बनाकर उनका उद्देश्यपरक छायांकन किसी भी शहरी छायाकार ने नहीं किया। नव उदारीकरण, विदेशी पूँजी निवेश, सेज, रिफॉर्म, मशीनी क्रांति और ग्लोबलाइजेशन के हमले से पहले के गाँवों का छायांकन न करके हमने एक अनमोल धरोहर को हमेशा के लिए खो दिया है। एक हजार साल तक हमारी धरोहर को विदेशी आक्रांता घोड़ों, ऊँटों और समुद्री जहाजों पर लाद-लादकर ले जाते रहे और हम तमाशबीन बने रहे। उनकी निगाह से जो चीजें बची, हमने उन्हें भी अपनी दृष्टि से ओझल कर दिया और अब भी हमारी आँखें मुँदी हुई हैं। हमने अपने ग्रामाँचलों की स्वर्णिम विरासत की घोर अवहेलना की है। लोक संस्कृति का इस कदर अनादर पतन की पराकाष्ठा है।

अशोक बैरागी - किसी भी दूसरी कला की तरह फोटोग्राफी कला के भी कुछ तय नियम होते हैं। उन नियमों की जानकारी कैमरामैन के लिए कितनी जरूरी है?

नैन साहब - नियम तो अशोक भाई, किसी भी कला के हों बहुत उपयोगी होते हैं। उनकी जानकारी होना अच्छी बात है। पर यदा-कदा फोटोग्राफी के जिन नियमों को हम जानते हैं, उन्हें छोड़ना भी पड़ता है। उदाहरण के तौर पर अच्छे चित्र के लिए धूप हमेशा कैमरामैन की पीठ पर पड़नी चाहिए पर कई बार प्रकाश के विपरीत इतने शानदार चित्र बनते हैं कि जिनकी तुलना नहीं की जा सकती।

अशोक बैरागी - कहते हैं कि डार्करूम का अपना एक नशा होता है और वहाँ के अनुभव बहुत दिलचस्प होते हैं। इस बारे में आपका क्या कहना है?

नैन साहब - डार्करूम में मैंने अनगिनत प्रिंट बनाए, हजारों फिल्में डिवेलप की और ढेरों स्लाइड यानी पारदर्शी बनाई। डार्करूम में अलग-अलग लाइट टाइमिंग देने से या रसायनों में फिल्म को ज्यादा या कम समय तक रखने से अलग-अलग इफेक्ट्स (प्रभाव) पैदा होते हैं। अगर पेपर का ग्रेड बदल दिया जाए तो चित्र का चरित्र बदल जाता है। वर्षों तक नित्य आधी-आधी रात खड़ा रहकर मशक्कत का काम करने से नशा तो स्वतः पैदा हो जाता है।

अशोक बैरागी - आपने छायांकन के लिए गाँव को ही क्यों चुना? जबकि चित्रों से जुड़ी बहुत सारी बढ़िया चीजें तो नगरों और शहरों में भी खूब मिलती हैं?

नैन साहब - (मंद-मंद मुस्कुराकर) यदि मेरा जन्म गाँव में नहीं होता तो शायद मैं भूलकर भी कैमरे का मुँह-माथा नहीं देखता। मुझे लगता है प्रकृति मुझ पर जरूरत से ज्यादा मेहरबान है। इसीलिए उसने मुझे हरियाणा के छोटे-से गाँव में पैदा किया। मैं बड़भागी हूँ कि मेरे जैसे गँवई व्यक्ति को सर्वोच्च सत्ता ने देहाती दुनिया की फोटोग्राफी के लिए चुना। जहाँ

तक तुम्हारे सवाल की बात है, आँखें खोलने के बाद मैं गाँव की बेपनाह खूबसूरती, पुरखों के पारंपरिक और श्रमसिक्त संस्कारों की वजह से जिंदा हूँ। ग्रामधरा की सोहन संस्कृति के सुंदर चित्र उतारने की लालसा मुझमें बचपन से ही है। गाँव को बिसारकर मैं एक क्षण के लिए भी जीवित नहीं रह सकता।

चातक का जो नेह मेघ से है, मेरा वही अपनापा गाँव से है। गाँव ने मुझे कलम और कैमरा पकड़ने का संबल दिया है। ग्रामगंध और ग्राम परिवेश ने मेरे नायाब चित्रों की पूँजी में भारी इजाफा किया है। गाँव में रहकर और यहाँ की माटी में लोटपोट होकर मैं स्वयं को गौरवान्वित महसूस करता हूँ। मेरे प्राण गाँव में रचे-बसे हैं। अपने पुश्तैनी गाँव के अलावा देश के दूरस्थ अंचलों में बसे तमाम छोटे-बड़े गाँव मुझे सदैव अपनी ओर खींचते हैं। गँवई धरा के अंचल में मेरे लिए असीम सुख है। अपने कैमरे के जरिए मैं ग्राम और ग्राम्य संस्कृति के उजले पहलुओं को अमर करना चाहता हूँ।

अशोक बैरागी - आपने कैमरा थामने के बाद सारी उम्र गाँव में बिता दी। गाँव के प्रति आपका इतना अपनापा कैसे है ?

नैन साहब - अशोक भाई, यदि मैं सही-सही कहूँ तो पुरखों की थाती से जुड़े बचे-खुचे चिह्नों को कैमरे के जरिए सहेजने की भावना मेरे मन में रही है। मात्र इतनी-सी लालसा है कि देशज अस्मिता का अक्ष मेरे चित्रों में मुँह बोलता दिखाई दे। ग्राम संस्कृति से जुड़े कुछ ऐसे कालजयी चित्र मैं भावी पीढ़ियों के लिए छोड़ना चाहता हूँ, जिनमें हमारी ग्राम सुचिता का सच्चा अक्ष प्रतिबिंबित होता हो। मेरे देह और दिलो-दिमाग को गाँव की जिन चीजों से उर्वरता मिली है, वे पूरी शिद्दत के साथ मेरे चित्रों में उभरे यही मेरा मन है। गाँव से जो पोषणा मुझे मिली है, उसी की बिना पर मेरा जुझारूपन कायम है। जिस माटी को चाट-चाटकर मैं बड़ा हुआ हूँ और जिस माटी ने मुझे कलाकारियों की ओर प्रेरित किया है, तो उस पूजमान माटी के चित्रों को मैं कविता में क्यों न ढालूँ ? मैं कैमरामैन बाद में हूँ, धरती माता का चाकर पहले हूँ।

अशोक बैरागी - पहले के गाँवों में ऐसी क्या खूबी थी, जो आपको इस कदर अपनी ओर खींचती रही?

नैन साहब - अरे भाई! असल गाँव तो पुराने ही थे। आजकल तो गाँव का बस नाम ही रह गया है। पहले के गाँवों में तो इतनी जीवंतता थी कि कैसे बताऊँ। उस दौर के गाँव हुनरमंद और कमेरे लोगों से भरे पड़े थे। आज वे कच्चे मकानों वाले धूल-धूसरित, सहज और आत्मनिर्भर गाँव कहीं दिखाई नहीं पड़ते, जो साठ के दशक तक सर्वत्र मौजूद थे। जहाँ लोग चैती-फगुआ गाते थे। अलगोजे और बांसुरी की तानों पर झूमते थे। जहाँ गाँव के जोगी सारंगी पर हीर-रांझा और आल्हा-ऊदल के किस्से सुनाते थे। वे दिन-रात खेत-खलिहान में

कमेर करते थे। ढोर-डंगरों के साथ लहस-पहस रहते थे। तब सब के दुख-सुख साझे थे। छत्तीस बिरादरी का इकलास था। सामूहिक उठ-बैठ में वे सुख समझते थे। उन गाँव के छायाचित्र हमारे पास होते तो हम अपने बाप-दादाओं के रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, हास-उल्लास, गीत- संगीत और कामधंधों से अवगत हो सकते थे, पर अफसोस ऐसा नहीं हुआ।

अशोक बैरागी - आपका खींचा हुआ पहला फोटो किस पत्रिका में छपा था और वह किसका चित्र था?

नैन साहब - मेरा पहला फोटो दो वृद्धों का चित्र था, जो 'जूम फोटो' नामक अंग्रेजी पत्रिका में 15 जून, सन् 1981 में छपा था। इस पत्रिका का संपादन अपने जमाने की मशहूर शख्सियत सादिया देहलवी करती थी।

अशोक बैरागी - आपका खींचा हुआ पहला चित्र अंग्रेजी पत्रिका में छपा। क्या अंग्रेजी के और भी पत्र-पत्रिकाओं में आपके चित्र छपे?

नैन साहब - हाँ खूब! अंग्रेजी में 'एग्फा गैवर्ट फोटो गैलरी' और 'फोटोग्राफी टुडे' नामक दोनों पत्रिकाएँ फोटो कंपीटीशन से जुड़ी थी। इनके लिए चित्रों का चयन 'गुरुजी' नाम से ख्यात आर. आर. भारद्वाज करते थे और इनमें मेरे चित्र निरंतर प्रकाशित होते थे। 'लैंस लाइट' और 'मिरर' पत्रिका भी फोटोग्राफी की अच्छी पत्रिकाएँ थी। इनके साथ ही 'द इलेस्ट्रेटिड वीकली ऑफ इंडिया' पत्रिका के 'द थर्ड आई' नामक नियमित स्तंभ में मेरे फोटो बरते गए थे। 'हरियाणा रिव्यू' नामक पत्रिका में भी मेरे बहुत फोटो छपते थे। 'द ट्रिब्यून' के 'संडे पिक्चर' नामक स्तंभ में और 'एंप्लॉयमेंट न्यूज़' में छपे मेरे फोटो को खूब सराहे गए।

अशोक बैरागी - हिंदी की ऐसी कौन-सी नामचीन पत्रिकाएँ थी, जिनमें आपके फोटो या चित्र नियमित बरते जाते थे?

नैन साहब - शुरू में मेरे चित्र मासिक पत्रिका 'सारिका' के नियमित स्तंभ 'तस्वीर बोलती है' में छपे थे। तब इसके संपादक डॉ. कन्हैयालाल नंदन थे। अवध नारायण मुदगिल के समय में भी 'सारिका' के आवरण पर मेरे कई चित्र छपे थे। 'कादंबिनी' (मासिक) के नियमित स्तंभ 'और अंत में' में भी वर्षों तक मेरे चित्र छपते रहे। डॉ. राजेंद्र अवस्थी ने 'कादंबिनी' के आवरण पर भी मेरे काफी चित्र छापे थे। 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' पत्रिका के आवरण व अंदरूनी पन्नों पर मेरे चित्र खूब आते थे। 'गाँव के नाम एक सुबह एक शाम' और 'अधढके सौंहे सदा' जैसे शीर्षकों के तहत मेरे फोटो फीचर भी इसमें छपा करते। 'धर्मयुग' 'रविवार', 'मनोरमा', 'राजमणि', 'समाज कल्याण', 'हरियाणा साइंस बुलेटिन', 'जतन', 'शुभ तारिका', 'हरिगंधा' और 'पुष्पगंधा' सरीखी पत्रिकाओं में मेरे चित्र नियमित स्थान पाते रहे।

लोकसंपर्क विभाग हरियाणा की 'हरियाणा संवाद' और 'तामीरे हरियाणा' पत्रिकाओं में भी मेरे छायाचित्रों को व्यापक जगह मिली। इन पत्रिकाओं का काम डॉ. राजेंद्र स्वरूप वत्स देखते थे। लोकसंपर्क विभाग के तत्कालीन निदेशक अनिल राजदान ने विभागीय पंपलेट, कैलेंडर और कैटलॉग आदि में हरियाणवी संस्कृति से जुड़े मेरे सैकड़ों चित्रों को स्थान देकर मुझे कृत्तार्थ किया।

अशोक बैरागी - उस समय की बाल पत्रिकाओं में भी बच्चों के कलात्मक फोटो खूब छपते थे। क्या आपने कभी उनके लिए भी चित्र भेजे?

नैन साहब - हाँ, जरूर भेजे। बच्चों की मशहूर मासिक पत्रिका 'पराग' के नियमित स्तंभ 'तस्वीर ने कहा' में मेरे चित्र खूब छपे। बाद में भी जिन दिनों 'पराग' का काम डॉ. कन्हैयालाल नंदन, हरिकृष्ण देवसरे और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जैसे दिग्गज देखते थे तब भी मेरे खींचे हुए बच्चों के मुँह बोलते चित्र इस पत्रिका में खूब छपे। इसी तरह मासिक पत्रिका 'नंदन' में जयप्रकाश भारती ने मेरे चित्र कई बार बड़े चाव से बरते थे। 'बाल भारती' (मासिक) में छपे मेरे फोटो खूब पसंद किये गए। 'बालहंस' (पाक्षिक) के संपादक मनोहर वर्मा बच्चों के विविध विषयों के चित्र मुझसे कहकर मंगवाया करते थे। 'नन्हें तारे' (पाक्षिक) के संपादक पुष्प कुमार सिंह 'कुमार' और हरीशचंद्र जैन भी मेरे चित्रों के लिए सदैव लालायित रहते थे।

अशोक बैरागी - सर एक समय था, जब मासिक पत्रिकाओं के अलावा दैनिक और साप्ताहिक समाचार-पत्र भी फोटोग्राफी कला के काम को काफी स्थान देते थे। आपकी छायांकन कला को किन-किन अखबारों ने जन-जन तक पहुँचाया ?

नैन साहब - बात सन् 1982 की है, जब 'पंजाबी ट्रिब्यून', 'रोजगार समाचार', 'पंजाब केसरी' और 'दैनिक ट्रिब्यून' आदि में मेरे चित्र छपने शुरू हुए। 'दैनिक ट्रिब्यून' के स्थायी स्तम्भ 'सप्ताह का चित्र' में वर्षों तक मेरे चित्र छपे। इसी अखबार में 'शीर्षक बताइए' नामक स्तंभ में भी अक्सर मेरे चित्र छपते थे। इसके बाद 'जनसत्ता', 'राजस्थान पत्रिका' और 'नवभारत टाइम्स' में मेरे चित्रों को जगह मिलने लगी थी। 'जनसत्ता' में मंगलेश डबराल और 'गुरुवारी जनसत्ता' में पुष्प कुमार सिंह 'कुमार' ने प्रचुर मात्रा में मेरे श्याम-श्वेत और रंगीन चित्र प्रकाशित किये थे। उन दिनों 'गुरुवारी जनसत्ता' में छपे कश्मीरी लाल जाकिर (उर्दू- लेखक) के 'नागपुत्री गंगा' और 'नंगे सिर वाली औरत' नामक दोनों उपन्यासों के तमाम चित्र उनकी विषय वस्तु के अनुरूप मैंने ही खींचे थे, जो उपन्यासों के साथ धारावाहिक रूप में छपे थे।

'नवभारत टाइम्स' के हरियाणा संस्करण में इसके कार्यकारी सम्पादक सुरेंद्र प्रताप सिंह और राजेंद्र भारद्वाज ने ग्राम-विषयक मेरे चित्रों को बड़े मन से छापा। इतनी बड़ी तादाद

में मेरे चित्रों को पहली बार 'नवभारत टाइम्स' ने ही जगह दी थी। रोहतक से छपने वाले 'पींग' (सप्ताहिक) में डी. आर. चौधरी ने सन् 1989 से लेकर जब तक अखबार निकला, तब तक मेरे ही चित्र छापे। 'पींग' में उनने 'कैमरे की जुबानी' स्थायी स्तंभ खासतौर से मेरे कैमरे के लिए रखा था। जिसमें हर हफ्ते कोई एक कलात्मक चित्र छपता था।

'दैनिक हिंदुस्तान' में मेरे चित्रों को देवकृष्ण व्यास ने भी खूब छापा। सन् 1990 में दिल्ली से छपने वाले 'संडेमेल' (सप्ताहिक) में डॉ. कन्हैयालाल नंदन ने और इसके साथ छपने वाली पत्रिका हेतु मेरे बहुत सारे चित्र आग्रह पूर्वक मंगवाए थे, जिन्हें 'कैमरा' नामक स्तंभ में अग्रणी कथाकार उदय प्रकाश और 'पाठकीय कैमरा' स्तंभ में रमेश बत्रा ने बड़ी रुचि से प्राथमिकता दी। सन् 1990 में गुड़गाँव से छपने वाले 'जनसंदेश' में डॉ. चंद्रत्रिखा ने 'तस्वीर कुछ कहती है' स्तंभ की शुरुआत मेरे खींचे चित्र से की थी। शुरू से अंत तक इसमें मेरे चित्र रह-रहकर छपते रहे थे। 'राष्ट्रीय सहारा' में भी मेरे चित्रों की काफी गुंजाइश रहती थी।

रोहतक से शुरू हुए 'हरिभूमि' (साप्ताहिक) में मेरे छायाचित्रों के लिए 'घूमता आईना' नाम से एक स्थायी स्तंभ रखा गया था। बाद में जब 'हरिभूमि' दैनिक हुआ तो भी उसमें भी मेरी फोटोकारी के लिए 'तीसरी आँख' नाम से एक नया स्तंभ शुरू किया गया था, जो कई साल चला।

अशोक बैरागी - यदि हम हिंदी फिल्मों के छायांकन की बात करें तो कौन-कौन ऐसे नामवर छायाकर हुए, जिनने फिल्म फोटोग्राफी को एक नई दिशा प्रदान की ?

नैन साहब - हमारे देश में हिंदी व दूसरी फिल्मों का छायांकन करने वाले एक से एक दिग्गज और नामवर छायाकार हुए हैं। जिनने अपने जमाने में फिल्मों के बेमिसाल छायांकन के जरिए एक इतिहास रचा है। इनमें सुब्रत मित्र, फल्ली यानी फाली मिस्त्री, वी.के. मूर्ति, नितिन बोस, राधू कर्माकर, विमल राय, कमल बोस, फरीदुद्दीन ईरानी, नरीमन ईरानी, मार्शल बिरगेंजा, चारुदत्त, प्रवीन भट्ट, प्रेमसागर, आलोक दास गुप्ता, एम.एन. मल्होत्रा और धर्म चोपड़ा आदि लोगों ने जिस खूबसूरती से फिल्मों की फोटोग्राफी की है, उसे सिनेमा की दुनिया में सदैव याद रखा जाएगा। सत्यजीत रे की फिल्मों की फोटोग्राफी सुब्रत राय करते थे। इनमें वी.के. मूर्ति साहब को उनके छायांकन के योगदान के लिए 'दादा साहब फाल्के' पुरस्कार से नवाजा गया है।

किसी सिने छायाकार को इस क्षेत्र में मिलने वाला यह पहला और बड़ा सम्मान है। मैंने 'जाल', 'प्यासा', 'कागज के फूल', तथा 'साहब, बीवी और गुलाम' जैसी फिल्मों में वी.के. मूर्ति के छायांकन का कमाल देखकर उनसे मिलने की ठानी। बैंगलौर में मैं उनके

घर पर जाकर मूर्ति साहब से मिला तो मैंने पाया कि हुनरमंद तो वे गजब के थे ही, इंसान भी वे आला दर्जे के थे।

अशोक बैरागी - क्या राष्ट्रीय स्तर पर पहचान रखने वाली फोटोग्राफी की किसी संस्था से भी आपका संबंध रहा है?

नैन साहब - हाँ, जरूर रहा है। मैं पिछले चालीस वर्षों से 'फेडरेशन ऑफ इंडियन फोटोग्राफी' और 'नेचर फोटोग्राफरज एसोसिएशन' का आजीवन सदस्य हूँ।

अशोक बैरागी - भारतीय कला छायांकन को नई ऊँचाइयों पर पहुँचाने वाले दिग्गज छायाकार देश में कौन-कौन हुए हैं?

नैन साहिब - यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे भारतीय छायांकन के पितामह कहे जाने वाले आर. आर. भारद्वाज साहब समेत इ. काशीनाथ, एन. त्यागराजन, पी. एन. नेहरा, आश्विन मेहता, पी. के. दे, एस. पाल, अविनाश पसरीचा, वामन ठाकरे, ओ.पी. शर्मा, मित्र बेदी, स्वामी सुंदरानंद, अशोक दिलवाली और नरेश बेदी जैसे छायांकन को नए आयाम देने वाले मूर्धन्य छायाकारों से मिलने के कई अवसर मिले।

अपने फन के माहिर ऐसे दिग्गजों की फेहरिस्त काफी लंबी है। जिनमें के.एल. कोठारी, जहांगीर नौरोजी ऊनवाला, होमाई व्यारावाला (पारसी महिला), ए.एल. सैयद, टी. एफ. जेती, सूरज एन. शर्मा, विद्याव्रत, जी.टी. थॉमस, ओ.सी. एडवर्ड, दत्ता खोपकर, डॉ. जी. थॉमस, सी. राजगोपाल, प्रेम सागर, वेणुसेन, गुरमीत ठुकराल के नाम बड़े सम्मान से लिए जाते हैं। इन सब नामवर छायाकारों के कलात्मक छायांकन की जितनी सराहना की जाए, कम है। वे लोग वाकई धन्य हैं, जिनने इनके चित्रों को देखा और इनसे मिले हैं।

अशोक बैरागी - पत्र-पत्रिकाओं में चित्रांकन, रेखांकन और कार्टूनिंग वगैरह कला के काम से जुड़े अन्य कलाकारों से भी क्या आपका कोई संपर्क रहा है?

नैन साहब - हाँ भाई, बड़ा स्नेहपूर्ण नाता रहा है। हिंदुस्तान टाइम्स ग्रुप के सुकुमार चैटर्जी और सुशील कालरा, टाइम्स ऑफ इंडिया ग्रुप के सुधीर तैलंग और राजकमल, 'जनसत्ता' के डॉ. राजेंद्र घोड़पकर, द ट्रिब्यून ग्रुप के संदीप जोशी और 'हरिगंधा' पत्रिका के रामप्रताप वर्मा तथा शक्ति सिंह अहलावत जैसे कलाप्रिय और राष्ट्रीय ख्याति के लोगों से

मेरा बड़ा निकट का रिश्ता रहा है। पेंटिंग के क्षेत्र में मेरे मित्र हरिपाल त्यागी का काम मुझे बड़ा प्रिय है।

अशोक बैरागी - आजकल डिजिटल और मिरर लैस कैमरों का बोलबाला है। बाजार में उनके आने से फोटोग्राफी की विधा में क्या बदलाव आए हैं?

नैन साहब - डिजिटल कैमरों के आने से तकनीक के बदलाव में जमीन-आसमान का अंतर आ गया है। वक्त के साथ कैमरे बदलते रहे हैं। सबसे पहले इंग्लैंड से कैमरे आए। इसके बाद कैमरे जर्मनी, फ्रांस और अमेरिका से आयातित होने लगे। इस तरह एक के बाद एक बदलाव होते रहे। नयी तकनीक और नए कैमरे फोटोग्राफी की विधा के लिए बेहद अनुकूल और उपयोगी हैं। इस विधि से फोटो का जटिल काम बहुत सहज और सुगम हो गया है। इस विज्ञान के आने से एक सैकेंड के हजारवें हिस्से में फोटों खींचकर दुनिया के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचायी जा सकती है। हमारे रोजमर्रा के कार्यों में इस प्रविधि का जो प्रसार हुआ है, वह स्वागत योग्य है।

अशोक बैरागी - डिजिटल क्रांति से छायांकन कला पर क्या प्रभाव पड़ा है?

नैन साहब - इस तकनीक के जरिए आम आदमी भी आसानी से फोटो खींच सकता है। इस विज्ञान से फोटोग्राफी की विधा तीव्रता से पॉपुलर हो गई है। इससे फोटोग्राफी की राह में बाधा बनने वाली तमाम अड़चनें भी दूर हो गई हैं।

अशोक बैरागी - अकादमिक दृष्टि से आपका छायांकन का काम कितना महत्वपूर्ण है?

नैन साहब - पहले के सारे चित्र अकादमिक महत्व के ही हैं। इन्हें केवल फोटो न कहकर एक विशेष कालखंड का इतिहास कहा जा सकता है। जिनकी उपयोगिता को देखते हुए सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं को चाहिए कि वे इनका संरक्षण करने के साथ-साथ तत्परता से इनके प्रदर्शन की स्थायी व्यवस्था करें। ताकि नई पीढ़ी इनसे लाभान्वित हो सके। हरियाणा साहित्य अकादमी पंचकूला, म. द. वि (रोहतक) के टैगोर ऑडिटोरियम और कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र के धरोहर संग्रहालय में मेरे फोटवों की स्थायी चित्रदीर्घाएँ हैं। युग बदलने के कारण पहले की अपेक्षा चित्रों अहमियत लाख गुना बढ़ गई है। इसलिए इनके बचाव और रख रखाव की महती आवश्यकता है।

अशोक बैरागी - आपने तस्वीरें खींचते समय किस तरह के जोखिम उठाए हैं?

नैन साहब - देखिए, सुंदर चित्रों के लालच में मुझे कई बार मौत तक के जोखिम उठाने पड़े हैं। फोटोग्राफी मेरी अस्मिता और मेरे अस्तित्व की सबसे बड़ी पूँजी है। सुंदर चित्रों की चाह में मुझे कदम-कदम पर विपरीत परिस्थितियों से जूझना पड़ता है। डीग (भरतपुर) राजस्थान के किले की फोटोग्राफी करते हुए मैं साठ फुट गहरे कुएँ में जा गिरा था।

एक बार फूलों की घाटी की ओर जाते हुए एक ग्लेशियर से फिसलकर मैं अलकनंदा नदी में डूबते-डूबते बचा था। और हाँ, एक दफा मैं अरावली (राजस्थान) के जंगलों में एक रात भेड़ियों की भेंट चढ गया था। सांपों, बिच्छुओं, कानखजूरों, कछुओं, मधुमक्खियों, भिरड़ों और तत्तियों आदि से भी मेरा सामना होता रहता है। लंबी यात्राओं के दौरान सामान की चोरी के अलावा हड्डी-पसली टूटने की नौबत कई बार आई है। विकट जगहों पर फोटो लेते समय कई बार कैमरे भी टूटे हैं। बाहरी प्रदेशों में काम करते समय कई ऐसे डरावने हादसों से गुजरना पड़ा है, जिन्हें याद करके आज भी शरीर में सिहरन दौड़ जाती है। मेरी दिली इच्छा है कि इस संसार से जाते समय मेरे हाथ में कैमरा हो तथा घर से दूर कहीं चित्र खींचते हुए मौत एकाएक मुझे अपने आगोश में ले ले।

अशोक बैरागी - फोटोकारी के काम में आने वाली अड़चनों से आप क्योंकर निबटते हैं?

नैन साहब - भाई अड़चनें तो बहुत आती हैं। जैसे वस्तु की स्थिति को लेकर, चित्र की पृष्ठभूमि और मौसम संबंधी आदि। इसके लिए धैर्य और सूझबूझ बहुत जरूरी है। अड़चनें जब आती हैं तो उनसे निबटने के तरीके भी तत्तक्षण सूझ जाते हैं। और कोई भी अड़चन इतनी बड़ी नहीं होती, जो हमें मंजिल तक जाने से रोक सके।

अशोक बैरागी - नैन साहब, आँखों की रोशनी छीजने के बावजूद भी आप इतनी श्रम, निष्ठा और लगन से लेखन- छायांकन के काम में जुटे हैं। इसके पीछे कौन-सी प्रेरणा है?

नैन साहब - महज दस फ़ीसदी रोशनी ही मेरी एक आँख में बची है। रोशनी का यह बचा-खुचा अंश मुझे नित्य कैमरा उठाने को विवश करता है। काम की यह तड़प मुझे चैन से नहीं बैठने देती। क्योंकि इस कार्य से मुझे जो सुख और आनंद मिलता है, उसके आगे कुबेर का खजाना नगण्य है। बड़ों ने कहा है- 'काम प्यारा है, चाम प्यारा नहीं। '

अशोक बैरागी - कला का काम करने की एवज में जो सम्मान-पुरस्कार वगैरह मिलते हैं, उनके बारे में आपकी क्या राय है?

नैन साहब - किसी भी सम्मान की बनिस्बत मेरे काम की अहमियत ज्यादा है। पुरस्कारों की अपनी राजनीति है। मूल्यहीन राजनीति के इस दौर में सच्चे कलाकार को अपने काम की एवज में सम्मान की इच्छा रखना बेमानी है। कलाकारों से सम्मान के लिए फार्म भरवाने जैसी कागजी औपचारिकताएँ पूरी करवाना उनका और उनकी कला का गला घोटने के समान है। मेरा मानना है कि कला से जुड़े खास लोगों के काम को भावी पीढ़ियों के लिए संग्रहित, संरक्षित और प्रदर्शित करके भी उनका कद बढ़ाया जा सकता है।

अशोक बैरागी - नैन साहब, गाँव की इस कदर अनदेखी की मूल वजह क्या है?

नैन साहब - सच कहूँ तो हमारी राजसत्ता गाँव का बेड़ा गरक करने के लिए जिम्मेदार है। राजनेताओं ने गाँव की बजाय शुरू से ही चंद औद्योगिक घरानों को प्रश्रय दिया है। चमचमाते इंडिया के लिए ग्रामलोक बेशक आज बीती हुई बात है, लेकिन अंधेरे भारत के गाँव और ग्राम-ढाणियों में लोक परंपरा का आदिम स्वरूप आज भी स्वत: जीता-जागता और दौड़ता-भागता नजर आता है। नए दौर में पुरखों की रीत यद्यपि तेजी से सिमट रही हैं पर नई रीत को अपनाना भी तो जीवंतता का लक्षण है। मुझे मलाल इस बात का है कि हमारे पुराने गाँव के ठेठ स्वरूप का किसी भी रूप में 'डॉक्यूमेंटेशन' नहीं किया गया।

अशोक बैरागी - हरियाणा में ऐसे और कौन-कौन छायाकार हुए जिनने अच्छा काम किया ?

नैन साहब - रोहतक के लाजपत राय ग्रोवर, गाँव कान्ही (रोहतक) के योगजाय, झज्जर के विकास वत्स और सिरसा के गुरिंदर मान जैसे मेरे अभिन्न मित्रों ने अपने समय में अच्छी फोटोग्राफी की हैं। अफसोस कि ये लोग अब हमारे बीच नहीं रहे। अन्य छायाकारों के बारे में मैं अपना मत व्यक्त नहीं करना चाहता, मेरी दृष्टि में यह नैतिक नहीं है।

अशोक बैरागी - आजकल अखबारों और पत्रिकाओं में कलात्मक चित्रों के लिए कितनी गुंजाइश है?

नैन साहब - पहले तमाम अखबारों में चित्रों के लिए भरपूर जगह रहती थी लेकिन अब अखबारों में वैसे चित्र नहीं छपते। चित्रों को अधिकाधिक स्थान देने वाली तमाम पत्रिकाएँ कभी की बंद हो गई। मोबाइल में कैमरे आने के बाद कला छायांकन का काम संकट में पड़ गया है। मोबाइल फोटोग्राफी के अनियंत्रित विस्तार ने उत्कृष्ट एवं कलात्मक छायांकन को एक बारगी ही हाशिये पर धकेल दिया है। अब कला मिशन न होकर व्यवसाय बन गई है किंतु मेरी दृष्टि में कला व्यवसाय की वस्तु नहीं है। दरअसल यह हमारी सांस्कृतिक आवश्यकताओं और आत्मिक सुख के लिए है।

अशोक बैरागी - नई पीढ़ी के छायाकारों से आप कितनी उम्मीद रखते हैं ?

नैन साहब - जमाना नये लोगों का है और सृजन की संभावनाएँ भी अनंत हैं। नई पीढ़ी के युवक-युवतियाँ इस काम में भरपूर रुचि ले रहे हैं और इसे यथाशक्ति आगे बढ़ा रहे हैं। यह अच्छी बात है।

संपर्क: 9466549394

एक असली इंसान की कहानी

वी. बी. अबरोल

जब मैं बामेहरबानी प्रोफ़ेसर बलबीर सिंह मलिक रघबीर सिंह हुड्डा साहब के नज़दीकी संपर्क में आया तो उन्होंने मेरे पढ़ने के शौक का इम्तिहान लेने के बाद मुझे कुछ नई किताबें पढ़ाना शुरू किया। "पढ़ाना" इसलिए कह रहा हूं कि वह पढ़ने के लिए सुझाव ही नहीं देते थे, बाद में पूछते भी थे कि कैसी लगी वह किताब। कौन सी बात अच्छी लगी, क्यों लगी? किस बारे में तुम अलग तरह से सोचते हो और क्यों? उन दिनों उन्होंने मुझे बोरिस पोलेवोई की लिखी किताब "असली इंसान" पढ़ने को दी। किताब का मुख्य किरदार सोवियत हवाई सेना का एक पायलट था जिसकी दोनो टांगें एक हवाई लड़ाई में अपना जहाज़ गिर जाने की दुर्घटना के बाद काट देनी पड़ी थीं। टांगों के कट जाने से वह बहुत मायूस था कि जब उसकी सेना को उसकी सबसे ज़्यादा ज़रूरत थी, उसी समय वह अस्पताल में पड़ा था और आगे कभी जहाज़ न उड़ा पाएगा। उसको गुमसुम और दिनोदिन घुलते हुए देखकर उसी वार्ड में उससे भी संजीदा हालात में भर्ती सोवियत सेना के एक पॉलिटिकल कोमिसार ने उसके दिमागी हालात को ताड़ कर उसकी हौसला अफ़ज़ाई करना शुरू किया। कोमिसार ने उसे अखबार की कतरन दी जिसमें एक ऐसे पायलट की कहानी थी जिसने अपनी एक टांग कट जाने के बाद नकली टांग से फिर जहाज़ उड़ाया था। कहानी पढ़कर सोवियत पायलट ने कहा, "पर उसकी तो एक ही टांग कटी थी!" इस पर साथी कोमिसार ने जवाब दिया, "तो क्या हुआ? तुम तो सोवियत सेना के पायलट हो!" उसके बाद उस पायलट ने अपनी खुराक भी बढ़ाई और बिस्तर पर लेटे-लेटे कसरत कर अपने शरीर को इतना तंदुरुस्त बना लिया कि किसी नए आदमी को यकीन ही न हो कि उसकी दोनों टांगे घुटनों के नीचे से कट चुकी हैं। उसकी लगन को देखकर अस्पताल के मुखिया डॉक्टर जनरल ने उसके नकली पैर लगवा कर उसे पहले बैसाखियों के सहारे और फिर बिना सहारे चलना सिखाया। एक दिन डॉक्टर जनरल को खबर मिली कि उनका इकलौता बेटा जो उसी अस्पताल का एक होनहार डॉक्टर था पर लड़ाई में चला गया था

क्योंकि उसको लगा कि नौजवानों की वहां अधिक ज़रूरत थी, लड़ाई में शहीद हो गया था। इतने बड़े झटके के बावजूद डॉक्टर जनरल रोज़ाना की तरह अस्पताल का राउंड लेने आए, हर घायल सैनिक के हाल-चाल पूछे और उस मुताबिक उनकी दवाइयां बदलीं। जब मैंने हुड्डा साहब से पूछा कि क्या उस किताब को लौटाना ज़रूरी था तो वह मुस्कुराए और बोले, "किताब तो रख ले पर यह बता कि इसमें असली इंसान कौन है?" मेरे मुताबिक असली इंसान तो वह पायलट ही था जिसके बारे में किताब थी। इस पर उन्होंने मुझे एक बार फिर सोचने को कहा। मैंने जवाब दिया, "डॉक्टर जनरल भी कुछ कम नहीं!" वह फिर मुस्कुराए, "पर इन सब को हौसला देकर इंसान बनाने वाला कौन था?" "साथी पोलिटिकल कोमिसार?" आज मैं हुड्डा साहब के ज़रिए ही अपनी ज़िंदगी में आए एक और असली इंसान की कहानी जितना मैं जानता हूं, आपसे सांझा करने जा रहा हूं।

मेरा एम. ए. का नतीजा निकले अभी एक महीना भी नहीं हुआ था कि ऑल इंडिया जाट हीरोज़ मेमोरियल कॉलेज, रोहतक में 6 महीने के लिए पढ़ाने का नियुक्ति पत्र मिल गया! कॉलेज का नाम देख कर एक बार तो सोचा कि 6 महीने के लिए ही तो है, क्यों न किसी बेहतर जगह का इंतज़ार कर लिया जाए। फिर खयाल आया कि नाम यदि सेंट ज़ेवियर्स या सेंट स्टीफंस या डीएवी वगैरह कुछ होता तब भी क्या मैं यही सोचता; और फिर क्या सारे रास्ते बंद हो गए! 6 महीने के लिए ही तो है अपॉइंटमेंट, कहीं बेहतर जगह मिल गई तो वहां चला जाने से कौन रोकेगा! सो जुलाई 1968 के आखिरी दो-तीन दिन पहले मैंने ऑल इंडिया जाट हीरोज़ मेमोरियल कॉलेज, रोहतक में बतौर 'लेक्चरर इन इंग्लिश फॉर सिक्स मंथ्स' ज्वाइन कर लिया।

मैं इससे पहले कभी रोहतक नहीं गया था, किसी को जानता नहीं था। जब कोई नया परिचय होता और मैं बताता कि जाट कॉलेज में इंग्लिश का लेक्चरर लगा हूं तो वह मुझे ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर तक देख कर कहता, "जाट कॉलेज में तो अंग्रेज़ी मोहन साहब पढ़ाते थे। बहुत मेहनत करनी पड़ेगी पैर जमाने के लिए, तब भी उनका जैसा नहीं पढ़ा सकोगे। " पहले ही सप्ताह में कोई आधा दर्जन बार यही डायलॉग सुनकर मैं सोचने लगा कि भई, यह मोहन साहब कौन हैं जो बिना कभी देखे ही पैर जमाने के रास्ते में इतनी बड़ी चुनौती बन गए हैं! जिनको कभी देखा-सुना ही नहीं, उनका मुकाबला कैसे किया जाए? फिर मुझे यह भी घमंड था कि मैं उस समय देश की चुनिंदा 5-6 यूनिवर्सिटीज़ में से एक - राजस्थान यूनिवर्सिटी - से एम. ए. करके आया था जहां इंग्लैंड से पीएचडी करके आए हुए टीचर्स पढ़ाते थे और डिपार्टमेंट में मेरी तीसरी पोज़ीशन थी। चलो देखते हैं।

इस तरह 6 महीने कब बीत गए कुछ पता न चला। बस मोहन साहब की ख्याति के मुकाबले पैर जमाने की जद्दोजहद में ही लगा रहा। 6 महीने बाद न मैनेजमेंट ने कहा कि

तुम्हारा समय हो गया है, अब दफ़ा हो जाओ, न प्रिंसिपल साहब ने कुछ कहा और इसी तरह साल भी पूरा हो गया। चुनौतियों से जूझते हुए मेरा भी मन लग गया था। मेरे अपने राज्य में अंग्रेज़ी कंपलसरी नहीं रह गई थी, इसलिए नौकरी मिलने की संभावना 'न' के बराबर रह गई थी। अगली जुलाई के शुरू में जब मैं फिर जाट कॉलेज में पहुंचा तो किसी ने नहीं कहा कि तुम तो पहले ही 6 महीने की जगह पूरा सेशन निकाल चुके हो। बल्कि महीना बाद जब वेतन मिला तो उसमें ₹25 का सालाना इंक्रीमेंट भी लगा हुआ था। पर अभी तक मोहन साहब नाम के शख्स की ख्याति ने पीछा नहीं छोड़ा था। फिर एक दिन अचानक ही पता चला कि जो नाम साल भर से लगभग रोज़ ही सुनता आ रहा था उसका रहस्य क्या था।

हुआ यह कि मलिक साहब (प्रो बलबीर सिंह मलिक, हेड, डिपार्टमेंट ऑफ़ केमिस्ट्री) ने जब देखा कि यह लड़का तो टिक गया तो एक शाम कॉलेज के बाद मैं जहां रहता था वह आए और बोले, "यहां कमरे में पड़ा क्या कर रहा है? चल घूम कर आते हैं। " मैं भी उठ खड़ा हुआ और वह नज़दीक ही अपने दोस्त रघुबीर सिंह हुड्डा साहब के यहां ले गए। क्योंकि वह पास में ही रहते थे, इसलिए मैंने उनको देखा तो कई बार था, परिचय अब हो रहा था। हुड्डा साहब ने जब सुना कि मैं अंग्रेज़ी पढ़ा रहा हूं तो उन्होंने भी वही जुमला दोहराया, "अंग्रेज़ी तो भाई मोहन साहब पढ़ाया करते। तू पढ़ा ले है?" फिर पूछने लगे कि मैंने एम. ए. कहां से किया था और क्या-क्या पढ़ा था। जब मैंने बताया कि एम. ए. राजस्थान यूनिवर्सिटी से किया था तो उनकी दिलचस्पी बढ़ गई क्योंकि वह भी वकालत की पढ़ाई राजस्थान से करके आए थे। 'क्या-क्या पढ़ा' में जब बताया कि बर्नार्ड शॉ का 'आर्म्स एंड द मैन' नाटक भी पढ़ा था तो उन्होंने बल्कान देशों की राजनीति पर बात शुरू कर दी जिस पर वह नाटक लिखा गया था। मैं मुंह बाए उनको देखता रहा कि यह सब तो हमारे प्रोफ़ेसर ने कभी डिस्कस ही नहीं किया था जबकि वह इंग्लैंड से पीएचडी कर चुके थे और पूरे उत्तर भारत में उनको अंग्रेज़ी साहित्य के बेहतरीन विद्वानों में माना जाता था। पर हुड्डा साहब तो कह रहे थे कि मोहन साहब तो ऐसे पढ़ाते थे। उनका पढ़ाया कभी भूलता नहीं था। उस दिन दो बातें समझ में आईं। एक तो यह कि साहित्य महज़ कविता-कहानी-नाटक-नौटंकी नहीं, उसको पढ़ने-समझने के लिए एक सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक - समग्र - नज़रिए की ज़रूरत होती है, यानी साहित्य कैसे पढ़ा जाता है। दूसरी यह कि मोहन साहब नाम के शख्स से पढ़ा हुआ हर आदमी क्यों उनकी इतनी तारीफ़ करता था, क्यों अंग्रेज़ी पढ़ाने वाले हर नए टीचर को उनके मुकाबले तोला जाता था और उसके लिए कदम जमाना इतना मुश्किल क्यों था।

अब मेरे लिए शुरू हुई मोहन साहब की तलाश। पता चला कि वह कुछ महीने करनाल दयाल सिंह कॉलेज के प्रिंसिपल रहे, फिर पंतनगर युनिवर्सिटी में रजिस्ट्रार बनकर चले गए पर स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण वहां से भी छोड़ दिया। इसके बाद कहां गए कुछ ठीक से पता नहीं लग रहा था। इस बीच धक्के खाते-खाते मैं भी रोहतक से करनाल पहुंच गया।

यहां भी वही मोहन साहब! भई, प्रिंसिपल हो तो मोहन साहब जैसा! कुल 6 महीने रहे पर कॉलेज का कायाकल्प करके यूनिवर्सिटी परीक्षाओं के दौरान नकल रोक दी। कॉलेज के बाहर नकल करवाने वालों की भीड़ ने पत्थरबाज़ी शुरू कर दी तो गेट पर जाकर खड़े हो गए कि भले ही मुझे पत्थर मारो पर नकल नहीं होगी। अगली बात उन दिनों की है जब दूरदर्शन पर भीष्म साहनी के उपन्यास 'तमस' पर बने सीरियल की धूम मची हुई थी। मेरे हाथ कहीं से भीष्म जी की आत्मकथा लग गई (नाम तो उसका कुछ और ही है शायद)। भीष्म जी ने देश के विभाजन के बाद अंबाला में जीएमएन कॉलेज में पढ़ाया था। उस समय आज के पंजाब-हरियाणा में कॉलेज टीचर्स की यूनियन बनाने में उनका बड़ा योगदान रहा था। भीष्म जी लिखते हैं कि उनके साथ यूनियन बनाने में ओ. पी. मोहन साहब ने बहुत मेहनत की। तो यह मोहन साहब यहां भी पहुंच गए! जहां जाओ वहीं मोहन साहब। उनसे मिलने की मेरी बेताबी बढ़ती जा रही थी और उनका कुछ अता-पता चल नहीं रहा था।

ओ. पी. मोहन

फिर एक दिन रोहतक से प्रोफ़ेसर सुरिंदर कुमार का पत्र आया। सुरिंदर ने लिखा था कि मोहन साहब दोआबा कॉलेज, जलंधर के प्रिंसिपल के पद से रिटायर होकर मॉडल टाउन, रोहतक में अपने मकान में आ गए हैं। उनको डेमोक्रेटिक फ़ोरम में बुलाओ तो आ जाएंगे। मुझे भी लिख देना, मैं भी उनको बता दूंगा आपके बारे में। यह उन दिनों की बात है जब मोबाइल फ़ोन आए ही नहीं थे और लैंडलाइन कनेक्शन भी बड़ी मुश्किल से मिलता था। तो मैंने फटाफट चिट्ठी लिखी और डाक में डाल आया। सप्ताह खत्म होते-होते जवाब भी आ गया। भाषण का विषय, तारीख, कैसे आएंगे, कितने बजे पहुंचेंगे आदि सब जानकारी थी।

तकरीबन 20 साल से जिस आदमी का केवल नाम सुना था और बिना मिले ही जिससे सीखा था कि साहित्य क्या होता है, कैसे पढ़ा जाता है, जीवन के बारे में नज़रिया

पढ़ने-पढ़ाने में कैसे इस्तेमाल होता है, पढ़ाने वालों को भी यूनियन की क्यों ज़रूरत होती है, यूनियन में अलग-अलग नज़रिए वाले लोगों को किस तरह एक साथ लेकर चला जाता है आदि-आदि, देखने में वह कैसा होगा? हर समय ये सब बातें दिमाग में घूमती रहती थीं। शक्ल-सूरत कैसी है यह जानना इसलिए भी ज़रूरी था कि बस अड्डे पर उनको पहचानेंगे कैसे! खैर, यह समस्या तो मेरे सीनियर साथी प्रोफ़ेसर जगोट्टा ने हल कर दी जिन्होंने बताया कि दयाल सिंह कॉलेज में उनका सिलेक्शन मोहन साहब ने ही किया था और वह उनको पहचानते थे।

भाषण के समय से केवल 10-15 मिनट पहले जगोट्टा साहब उनको लेकर पहुंचे तो औपचारिक परिचय का समय भी नहीं था। खाना वह खाकर चले थे, एक कप चाय मिल सकती हो तो चलेगा और कितनी देर बोलना है। मैं उनके बारे में इतना कुछ सुन चुका था कि झिझकते हुए कहा, "सर, मैं आप पर कोई समय सीमा नहीं लगा सकता। आप जितना चाहें, बोलें। बाद में सुनने वालों में से कुछ लोग भी कुछ कहना, कुछ पूछना चाहेंगे, आपने उसका जवाब भी देना है। " "ठीक है," कह कर वह बोलने लगे और हम 70-80 टीचर, वकील, पढ़ने वाले, अन्य सुनने लगे। समय का ध्यान तो तब आया जब दो-सवा दो घंटे बाद वह खुद ही घड़ी देखकर बोले, "ओह, इतना टाइम हो गया! पर दोष मेरा नहीं है। मैंने तो इनसे पहले ही पूछ लिया था कि कितना टाइम लूं तो यह कहने लगे कि जितना आपको ज़रूरी लगे। दोष इनका भी नहीं है क्योंकि हम आज पहली बार मिल रहे हैं और इनको यह नहीं मालूम कि मेरी ब्रेकें लूज़ हैं। "

मैं यहां यह चर्चा नहीं करूंगा कि विषय क्या था, उन्होंने क्या-क्या कहा, बाद में क्या बहस हुई। बस इतना ही कि शाम के करीब 5:00-5:15 बजे सभा समाप्त हुई। चाय का गिलास हाथ में लिए वह पूछने लगे कि अब बस कितने बजे मिलेगी। मैंने कहा कि अब केवल एक ही बस है जो 5:45 बजे चंडीगढ़ से आती है और 1-2 मिनट रुक कर आगे चल पड़ती है। उस में खड़े होने की जगह भी मुश्किल से मिलती है, इसलिए आज रात आप यहीं रुक जाइए, सुबह पहली बस में आप को बैठा देंगे। पर उन्होंने ज़िद पकड़ ली कि जैसे भी हो जाना तो अभी है। उनका मूड देखकर जगोट्टा साहब उनको बस अड्डे ले गए। वापस आए तो पूछने पर बताया कि खड़े हुए ही गए हैं।

आप सोच रहे होंगे कि आखिर यह आदमी कहना क्या चाहता है। मैं भी वहां पहुंच ही रहा हूं। अगली बार जब रोहतक गया और वहां बात चलने पर ज़िक्र किया कि मोहन साहब बार-बार कहने पर भी रात करनाल में रुकने के लिए तैयार नहीं हुए तो किसी ने बताया, "तुम्हें नहीं मालूम, उनको मल-त्याग के लिए स्थाई रूप से बाईं तरफ़ बैग लगा

हुआ है जिसे हर चार-छ: घंटे में खाली करना पड़ता है। इसलिए वह जिन्हें ठीक से न जानते हों, उनके पास नहीं रुकते। "

मैं सोचकर ही कांप गया कि आदमी को ऐसी तकलीफ़ भी भुगतनी पड़ती है! पर तकलीफ़ कितनी बड़ी है उसका सही एहसास तो अब हुआ जब कोई छ: महीने पहले बड़ी आंत में बन गई रुकावट को हटाने के लिए मुझे ऑपरेशन करवाना पड़ा। जब होश आया तो बताया गया कि जहां रुकावट थी उस हिस्से को काट कर निकाल दिया है और वहां स्टोमा फिट कर दिया है, जिससे निकली गंदगी को इकट्ठा करने के लिए उस पर बैग लगाया है जिसे कुछ कुछ घंटों में खाली करना होगा। बैग चार-पांच दिन बाद बदलना भी होगा।

यह सब सुनना तो एक बात थी पर जब गंदगी बैग में जाने लगी और उसे कई-कई बार खाली करना होता तब समझ में आने लगा कि यह कितनी बड़ी मुसीबत है। पर यह तो कुछ भी नहीं था। सर्दी बढ़ रही थी कि एक रात बैग उखड़ गया। पेट का घाव अभी भरा नहीं था, गंदगी उस पर भी फैल गई। इतना होता तो भी गनीमत थी। पहने हुए कपड़े, रज़ाई तक सब गंदगी में लिप गए। फ़ोन करने के बावजूद इतनी ठंडी रात में कोई आने को तैयार नहीं जो सफ़ाई कर नया बैग लगा दे। कैसे कटी होगी वह रात, सोचा जा सकता है। सिर्फ़ मेरे लिए नहीं, पत्नी और बेटे के लिए भी। और यह तो सिर्फ़ पहली रात थी। इसके बाद कई बार फिर ऐसा ही हुआ। मैं सोचता था कि मेरा पीछा तो आठ-दस महीने में छूट जाएगा पर मोहन साहब को तो यह स्थाई रूप से लगा था। क्या बीतती होगी उन पर! मुझे स्टोमा बैग लगेछ: महीने से कुछ दिन अधिक हो गए हैं। आगे चल रहे इलाज के लिए हर 4 हफ़्ते में पीजीआई, चंडीगढ़ जाने के अलावा मैं घर की चारदीवारी से बाहर भी नहीं निकलता। मोहन साहब तो बसों में बैठे/खड़े इधर-उधर आते-जाते भी थे, पूरा सक्रिय जीवन बिता रहे थे।

जब ऑपरेशन के बाद मैं चंडीगढ़ से घर आया तो एक दिन रमणीक मोहन (मोहन साहब के सबसे छोटे साहबज़ादे और मेरे छोटे भाई) का फ़ोन आया। रमणीक कहने लगे, "बाकी बातें बाद में करेंगे, पहले तो आप इस स्टोमा बैग के बारे में जो कुछ पूछना चाहते हैं, खुलकर पूछें। पापा को 25 साल यह बैग लगा रहा, इसलिए मुझे भी काफ़ी जानकारी है। "

जानकारी तो ठीक है, रमणीक ने मुझे काफ़ी दी और हौसला भी बढ़ाया पर मेरे दिमाग में तो एक ही बात घूम रही थी - 25 साल! एक मैं हूं कि हर मिलने आने वाले को अपनी पूरी कहानी सुना कर बोर करता हूं और एक वह थे कि पूरे 25 साल इस लानत के साथ रहे और कभी किसी को भनक भी नहीं लगने दी! न केवल भनक न लगने दी बल्कि जब मैं पहली बार रोहतक उनके घर मिलने गया तो देखते ही चेहरा खिल उठा और बोले, "आओ,

अज़ीज़-ए-मन! अरे, तुम्हारा बैग कहां है?" मैंने कहा कि बैग तो जहां ठहरा हूं, वहीं छोड़ आया हूं तो कुछ नाराज़ होते हुए कहा, "आइंदा रोहतक आओ तो यहीं रहोगे। "आज भी कान में गूंजते हैं उनके शब्द, "अज़ीज़-ए-मन, आइंदा यहीं रहोगे।"

वह अकेले कभी रह ही नहीं सकते थे। रोहतक में उनके जितने भी पुराने साथी थे, उनको इकट्ठा कर एक ग्रुप बना लिया था जो हर महीने एक बार उनके यहां इकट्ठा हुआ करता। वहां सिर्फ़ पुराने दिनों को ही याद नहीं किया जाता था। एक बार जब मैं उनके पास गया तो कहने लगे, "तुम भी बैठो। आज कई पुराने लोगों से मुलाकात हो जाएगी। " सीआर कॉलेज ऑफ़ एजुकेशन के रिटायर्ड प्रिंसिपल चौधरी करण सिंह सबसे पहले आए। मोहन साहब को एक फूल भेंट कर बैठ गए। वह कहने लगे, "यह शाहजहानाबाद भी क्या जगह है, करण सिंह!" इसके बाद उन्होंने शाहजहानाबाद की खासियतों का ज़िक्र शुरू कर दिया। कुछ देर सुनने के बाद, जैसे मुंह में पानी भर आया हो उसे गटकते हुए चौधरी करण सिंह ने टोका, "यह शाहजहानाबाद है कहां, मोहन साहब? चलो न एक दिन वहां ही घूम आएं!" इस पर ठहाका लगाते हुए मोहन साहब बोले, "तुम्हें किसने प्रिंसिपल बना दिया जो यह भी नहीं जानते कि पुरानी दिल्ली शाहजहां ने बसाई थी, इसलिए इसे शाहजहानाबाद भी कहते हैं। " अब ठहाका लगाने की बारी चौधरी करण सिंह की थी।

मैं नहीं कह सकता कि इस दुनिया को और उसकी तमाम अच्छाइयों-बुराइयों के बीच उसमें जीने की कला को मोहन साहब से बेहतर समझने वाला दूसरा कोई शख्स मुझे ज़िंदगी में मिला हो! हरियाणा के लोग अपनी अक्खड़ बोली के लिए बदनाम हैं पर इतना मीठा बोलने वाला दूसरा मुझे नहीं मिला। मुझे शायद ही कभी उन्होंने नाम से बुलाया हो : सदा 'अज़ीज़-ए-मन' कहकर बुलाते थे। ज़िंदगी को पूरे आनंद के साथ जीते हुए भी हर समय अपना बिस्तर-बोरिया समेटने के लिए भी पूरी तरह से तैयार! एक गज़ब इंसान! एक असली इंसान!

लामणी

मनजीत सिंह

आजकल हरियाणा के हर कोने में गेहूं की कटाई जोरों शोरों से चली हुई है यह भी एक तरह से संस्कृति का हिस्सा है। जब गांव के किसान खेतों में लामणी करने के लिए जाते हैं तो उससे पहले वह बहुत सारे काम करते हैं। जैसे लोहार से अपनी दरांती में धार लगवाना, कुम्हार से नया मिट्टी का बर्तन खरीदना इत्यादि। इसके साथ साथ जब वह खेत में जाते हैं तो एक जलता हुआ गोस्सा (उपला) भी साथ में लेकर जाते हैं ताकि उन्होंने चाय बनाने में परेशानी ना हो। किसान अपने खेत में दंराती चलाने से पहले चारों तरफ खेत में घूमता है, जहां पर उसे पके हुए गेहूं नजर आते हैं उस तरफ से कटाई शुरू करता है, ताकि धीरे-धीरे वह बाकी खेत के गेहूं भी सूरज की धूप से जल्दी पक जाए। गेहूं के बीच-बीच में सरसों की भी एक लाइन बनी होती है जोकि पूरे खेत में छह या सात पंक्तियां होती हैं।

परिवार के लगभग सभी सदस्य खेतों में लामणी करने के लिए पहुंच जाते हैं। घर में भी तीन चार सदस्य बच जाते हैं, जो घर में पशुओं का, रसोई का काम देखते हैं। पुरूष अगर खेत में पानी लेकर आता है तो वह नजदीक के नलकूप, तालाब या कुएं से पानी भरकर मटका अपने खोए (कंधे) पर रख कर लाता है। उनमें से कुछ सदस्य तो घर पर रह जाते हैं पर कुछ सदस्य जवारा (खाना) लेकर खेत में जाते हैं। जवारे में महिलाएं लस्सी की बरौली,

सिलबट्टे से पिसी लाल मिर्च, हरी सब्जी, प्याज, गुड़ और चाय बनाने के लिए पतीला या देगची, चायपत्ती, चीनी या गुड़ लेकर जाते हैं।

पेड़ की ठंडी छांव में सभी लामणीकर्ता को आवाज देकर बुला लिया जाता है। फिर सब मिलकर कलेवा करते हैं या यूं कहें कि नाश्ता करते हैं। उसके बाद सभी लामणीकर्ता अपनी-अपनी पांत में फिर कटाई शुरू कर देते हैं। इस प्रक्रिया को पांथ कहा जाता है। अपने सामने से पांच छह फुट की चौड़ाई लेकर सभी गेहूं की कटाई करते हैं। फिर जवारा लेकर आने वाली कहती हैं कि क्या करना है मुझे जरा बताना, सभी सलाह मशविरा करके उसको गेहूं की पूळी बनाने का काम दिया जाता है। हरियाणा में खादर, बांगर तथा बागड़ इलाकों में भरोटे या गट्ठर बनाने पड़ते हैं।

खेतों का मालिक गट्ठर बांधने के लिए पराली से बणे जूण कटाई करने वालों को देता है। लामणी करने वालों के अगर घर में कोई छोटा बच्चा है तो छायादार पेड़ के नीचे उसका पालना घाल (डाल) देते हैं जिससे वह खेतों की ठंडी हवा से सो जाता है। पांच सात साल के बच्चे भी खेत में काम करवाते हैं। वो पांथ में कटाई करने वाले सदस्यों को पानी पिलाते हैं। कभी-कभी वह खेत के अंदर बर्तन लाता है, अपने से छोटे की देखभाल करता है। बीच बीच में वह खेलता रहता है, कोई पल्ली बिछाकर बर्तनों को पल्ली पर पटक-पटक कर खेलता रहता है।

दोपहर को लगभग एक बजे के आसपास वह दोपहर का भोजन करते हैं। फिर दो तीन घंटे तक आराम करते हैं। पुरुष होक्टी (छोटा हुक्का) भर कर गुड़-गुड़ करता है, कोई बीड़ी सुलगाता है। लेकिन घर की औरतें तब भी काम पर लगी रहती हैं। वह सबके जूठे बर्तन साफ करती हैं। तीन बजे के आसपास वह सब उठ जाते हैं फिर वही औरतें खेत में छोटा सा गड्ढा खोद कर चुल्हा बनाकर सूखे सरसों के ढांसरों (सरसों के तनों की पतली-पतली सूखी लकड़ियां) में आग जलाकर चाय बनाने का काम कर रही हैं, फिर सभी चाय का मजा ले कर सब फिर अपने-अपने काम में लग जाते हैं। फिर शाम घर आ जाते हैं। यह सिलसिला जारी रहता है।

कटाई पूरी होने के बाद बंधी हुई पुळी, गद्दे या भरोट्टों को खेत के बीच में इकट्ठा कर दिया जाता है। गट्ठरों से जिस दिन गेहूं निकालने का काम होता है, उन सभी गट्ठरों को उठा उठा खलिहान में जमा किया जाता है। फिर उनको थ्रेसर या हिडिंबा (गेंहू निकालने की मशीन) में डाले जाते हैं। शाम को जब गेहूं निकाल कर घर में लाते हैं तो सभी पड़ोस के बच्चे ट्राली को खाली कर देते हैं। फिर बच्चों को थोड़ा-थोड़ा गेहूं देकर भेज देते हैं। सभी बच्चे दुकान पर जाकर खाने की वस्तु लेते हैं

वर्तमान के झरोखे से कबीर

प्रोफेसर सुभाष चन्द्र

कबीर को सब लोगों ने अपने-अपने समय से ही देखा हैं। जब हम कबीर की बात करते हैं तो हम भी उनकी बाणी को अपने समय से ही देखते हैं।

कबीर 600 साल पहले हुए, लेकिन हमारे सामने जो कबीर है वह कितने साल बाद वाला कबीर है? जिस बाणी को हम पढ़ते हैं, जब वह संकलित की गई और कहां-कहां से की गई?

कबीर बनारस में पैदा हुए। बनारस शुरुआत से ही भारत में व्यापार का, राजनीति का, धर्म का, अध्यात्म का बहुत बड़ा केंद्र होता था। कबीर भी वहीं हुए। रविदास भी वहीं हुए। कहानी में आता है कि जात-पात में भरोसा करने वाले ज्ञानी लोगों ने गुरु रविदास की विद्वत्ता को स्वीकार करते हुए पालकी में बैठा कर पूरे बनारस में घुमाना पड़ा था।

कबीर की पंक्ति है "मैं काशी का जुलहा बूझो मोर ग्याना" मैं काशी का जुलाहा हूँ पंडित नहीं हूँ। क्या काशी के जुलाहे के पास कोई ज्ञान होता है? ये एक तरह से पंडितों को सीधी शास्त्रार्थ की चुनौती थी।

"तू कहता कागद की लेखी मैं कहता आँखिन की देखी।" कागज की लेखी का क्या मतलब है हमारी शास्त्रीय परंपरा, पौराणिक परंपरा। यह आंखिन देखी बहुत महत्वपूर्ण शब्द है। यानी कि जो जमीनी सच्चाई है वह हमारे सामने रखते हैं कबीर।

जब हम कबीर को पढ़ने लगते हैं तो ऐसी उन्होंने अनेक बातें कहीं हैं जो अपने समय की सच्चाइयों को अपने समय की चीजों को हमारे सामने ऐसे ले आते हैं, जैसे एकदम हमारे आगे ही रखी हो। कबीर में सबसे महत्वपूर्ण बात है "आंतरिक स्वच्छता"।

कसौटी क्या है? आचरण है। कोई शास्त्र, कोई धर्म की नियमावली नहीं। आपको व्यवहार के आधार पर देखा जाएगा। लौकिक संसार में ही होता है अनुभव। अनुभव से ज्ञान, आंखिन देखी, लोक ज्ञान। "लोक" में सब लोग शामिल होते हैं। जिस बुद्धिमत्ता या मत में हम सब की समुलियत है। आप यह समझिए कि वह सब कबीर में समा गया और इसीलिए शायद हमें कबीर अच्छे लगते हैं।

अन्यथा आप देखिए कि कबीर पैदा कहां हुए, बनारस में और सबसे ज्यादा फैले मध्यप्रदेश में, महाराष्ट्र में, बंगाल में। इसी तरह रविदास पैदा हुए बनारस में और फैल गए पंजाब में। ऐसा क्यों हुआ? जब हम यह देखेंगे कि यह सब कैसे होता है कि एक संत कहीं पैदा होता है और कहीं जिंदगी बिताता है और फिर कहीं उसके 500 साल बाद हजारों मील दूर उसके नाम पर मंदिर और कीर्तन हो रहे हैं।

देखिए कबीर तो थे निडर व साहसी आदमी! यह बहुत ही खतरनाक काम होता है, हर समय में। साहसी होना बहुत बड़ा गुण है। सारे हमारे जितने भी नीति वाक्य हैं, सूत्र वाक्य हैं, भरत ऋषि से लेकर बाकी सभी कहते हैं कि निडर बनो, साहसी बनो। लेकिन बहुत मुश्किल है! क्योंकि साहस तो ताकतवर के सामने दिखाना पड़ता है, कमजोर के सामने क्या साहस दिखाना है। जैसे आजकल हो रहा है कि कमजोर को पकड़ो, उनको मारो पीटो और वीडियो डाल दो। इसमें क्या साहस है भाई? पंगा लेना है तो फिर किसी बड़े से लीजिए। कबीर थे साहसी आदमी और हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनकी सबसे बड़ी विशेषता यही बताई है कि **कबीर में अस्वीकार का साहस है। यह जो अस्वीकार का साहस है, यह जो इतने बड़े-बड़े ग्रंथ, इतने बड़े-बड़े पोथे, इन सब की इतनी बड़ी-बड़ी सत्ता होते हुए भी उसकी परंपरा को नकार देना, कोई आसान काम नहीं होता।**

परंपरा का दबाव बहुत ज्यादा होता है। अरस्तु के बारे में मैं कई बार बताता हूँ। महान दार्शनिक अरस्तु वैद्य थे। दो पत्नियां थी उनकी। उस जमाने में यह अंधविश्वास प्रचलित था की औरतों के 40 दांत होते हैं। चिकित्सक थे! लेकिन किसी का मुंह खोल कर दांत गिन नहीं सके। और वे सारी उम्र यही मानते रहे। औरतों के 40 दांत होते हैं यह मानते रहे और देखिए परंपरा का इतना भारी दबाव होता है।

"पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ पंडित भया न कोई" बहुत प्रसिद्ध है। कबीर की लड़की थी। उसका नाम था कमाली। एक पंडित जी तक बात पहुंची कि सुना है कि कबीर यहां सब ब्राह्मणों को चुनौती देता हैं कि मैं शास्त्रार्थ करूंगा। वह तो ग्रंथों की गाड़ी भर के ले आया। वहां पहुंच गया जहां कमाली पानी भर रही थी। कमाली से पूछा कि कबीर का घर कौन सा है? तो वह बोली कि कबीर का घर तो शिखर पर है। वहां जाते हुए तो चींटी के पांव भी नहीं टिकते और आप तो फिर भी गाड़ी भर कर आए हो। तो इतनी सूक्ष्म जगह पर है कबीर का घर। क्यों गाड़ी लेकर घूम रहे हो।

"पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ पंडित भया न कोई"

ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय। "

यही ज्ञान है। यानी कि जो आचरण है। और क्यों इतने बड़े-बड़े पोथे लेकर घूम रहे हो?

कबीर को हम हिंदी वालों ने और यह जितने डेरे खुले हुए हैं उन्होंने रहस्यवाद में फंसाया हुआ है कि कबीर एक ऐसी दुनिया की बात करते हैं जहां तक हम पहुंच ही नहीं सकते। लेकिन कबीर कह रहे हैं कि मैं तो अनुभव की बात करता हूँ, आंखों देखी। नाथों का बहुत प्रभाव था कबीर के ऊपर और वह हमेशा शरीर की बात करते हैं। नाथ जो हैं वह भौतिक जगत की बात करते हैं। शरीर की बात करते हैं।

"झीनी झीनी बीनी चदरिया" अब इस पूरे पद को पढ़ जाओ आप। वह तो शरीर की ही बात कर रहे हैं। वह तो कहीं किसी दूर की कोई बात नहीं कर रहे। शरीर की बात कर रहे हैं कि यह शरीर है, इसमें एक इंगला है, एक पिंगला है वगैरा-वगैरा। नाथों की सारी शब्दावली है जैसे "ओंधा कुआं"। कि उल्टा कुआं है, उसमें से पानी पीना है। कैसे पियोगे? किसी और चीज की बात नहीं कर रहे। हमारा सिर होता है ओंधा कुआं कि सबसे ऊपर है यह। कोई रहस्य नहीं है। कबीर के यहां उसका जो रहस्यीकरण है उस से मुक्त हो जाओ। फिर देखिए कबीर कैसे आपके साथ हाथ मिला-मिला कर बात करता है। रहस्यीकरण किया हुआ है हमने कबीर का। मतों–मतांतरों में फंसा कर रखा हुआ उन्हें।

कबीर ने कहा "सहज समाधि भली" सहज का मतलब समझते हो कि जो प्राकृतिक है नैसर्गिक है। नैसर्गिक क्या है? नैसर्गिक यह है कि भूख लगे तो रोटी खाओ, प्यास लगती है तो पानी पियो। व्रत रखने की क्या जरूरत है। हमारा जो शरीर है, वह कुदरत की उत्पत्ति है। हम उसकी तर्कसंगति में हैं। यदि आप सारे व्रत रखते हो, सारी निवृत्ति करते हो। जंगल में चले जाते हो, कांटो पर लेटते हो, उल्टा लटकते हो, आग में तपते हो यानी कि जितनी हमारी इंद्रियां हैं उन सब को आप तड़पाओगे, तो कबीर का कहना है कि यह सही नहीं है। वो तो कहते हैं "सहज समाधि भली"।

कबीर को देखिए- कपड़ा बुन रहे हैं साथ ही साथ कविता कर रहे हैं। कपड़ा बुनने के जितने साधन हैं उन्हीं के माध्यम से सारा ज्ञान बता दिया कि यह ताना है यह बाना है, इसी

तरह इंगला है पिंगला है। हमारे शरीर का जैसे ताना-बाना है। किस तरह ठोक पीटकर यह कितने समय में बना है और आप देखिए कि हमारे शरीर को बनने में कितना समय लगता है? कि सारा ज्ञान जो है वह एक जुलाहे की भाषा में है। साधारण व्यक्ति की जो भाषा होती है उसी में सारी दुनिया के रहस्य बता दिए।

कबीर को पढ़ने के लिए या उसको समझने के लिए मेरे ख्याल से आपको संस्कृत का कोई शब्दकोश खरीदने की आवश्यकता नहीं है।

कबीर लोकज्ञान से, उस आंखों देखी से, तजुर्बे से जुड़े हुए थे। इसलिए उनको बाहर जाने की कोई आवश्यकता नहीं। कोई ढूंढ रहा है, कहीं कावड़ उठाए फिरता है, कंधे छिल गये, पांव सूज गए। भगवान ढूंढने जाते हैं। कबीर कहते हैं कि भाई वह तो घट-घट में है भीतर ही टोह लीजिए। "कस्तूरी का हिरन ज्यों फिर–फिर ढूंढत घास।।" घास में ढूंढता है, जबकि कहते हैं कि कस्तूरी कुण्डल बसै। वह तो अपने अंदर ही है। उसको पहचानो। अपने आप को पहचानो। खुद को पहचानो। कबीर का तो यही है बस। कबीर का यह नहीं है कि किसी और परमात्मा में कोई लौ लगानी है। कोई दूसरी दुनिया आएगी।

कबीर जिस परंपरा से जुड़े हुए थे चाहे वह नाथों की हो या बुद्ध की। किसी का कोई भरोसा नहीं। अगली किसने देखी? इसी जन्म में इसी लोकज्ञान के माध्यम से और बहुत सारे पद हैं और मेरा तो मन उछल उछल कर आता है जब ये साथी बोल रहे थे कि ये मैं इन सब चीजों के बारे में बात करूंगा, लेकिन समय की भी अपनी अहमियत है।

हमारे समय में बहुत संकट हैं। मैं जानता-समझता हूँ। झूठ बोलने का भी बहुत बड़ा संकट है, पूछिए मत कबीर के समय में भी था। कबीर के जमाने में भी था और उनका बहुत मशहूर एक दोहा है सच्चाई को लेकर और यहां सब जानते हैं कि झूठ फैलाने के नाम पर तो आज एक पूरी यूनिवर्सिटी खुली हुई है और वह सब सवेरे ही शुरू हो जाते हैं ब्रह्म मुहूर्त में झूठ आपके पास घर बैठे ही पहुंच जाता है।

इस तरह की चीजें कबीर के समय में भी थी कि झूठे पर तो लोग विश्वास करते हैं और सच कहूँ तो मारने आते हैं।

साधो देखो जग बौराना
सांच कहो तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना

कबीर की सारी कविता की खूबसूरती है– वो आपके साथ संवाद करती है। "साधो देखो जग बौराना", "साधो पांडे निपुण कसाई"। किसी को कह रहे हैं कबीर। वह अकेले में बैठकर नहीं लिख रहे। आप पूरे कबीर में देखेंगे कि किसी को संबोधित कर रहा है। वे कौन हैं जिनको कबीर संबोधित कर रहे है? कौन हैं वे लोग? वे लोग आप ही हैं।

खैर! धन्यवाद साथियो।

(इस वक्तव्य को लिपिबद्ध किया है हिंदी-विभाग, कुरुक्षेत्र विवि के शोधार्थी योगेश शर्मा ने)

मंगत राम शास्त्री

देक्खण जोग्गे छैल गाभरू
हो ग्ये आज भकैल गाभरू।

फुर्सत बी नी काम बि कुछ नी
ठांयें फिरैं मुबैल गाभरू।

पढ़ लिख कै भी रोजगार बिन
भोत घणे सैं कैल गाभरू।

सेना की भर्ती की बाट म्हं
फांस्सी खा ग्या कैह्ल गाभरू।

आज सियासत नै बणा लिये
जात्ति धरम रखैल गाभरू।

दुनिया की रफ्तार तेज सै
चाल बखत की गैल गाभरू

रोवै क्यूं सै छोड पाछली
अगली गिणले झैल गाभरू।

"खड़तल" ल्याया ज्ञान की गंगा
धो ले मन का मैल गाभरू।

जय्ब हरियाणा इस देस की सोच्चै

राजेन्द्र रेढ़ू

मनै ला लिया जोर भतेरा रै
पर पाट्या कोन्या बेरा रै।
किसनै ला दी आग जड़ाँ मैं ?
क्यूँ धुम्मा-धार अँधेरा रै ?

कोए स्याणा, मनै खोल बतावै
क्यूँ तात्ती लू, पहाड़ाँ तै आवै ?
किस बैरी नै नरक बणा दिया,
जो धरती का सुरग कुहावै ?
सुणो काटणा कोए चाहवै !
क्यूँ भला काटणा कोए चाहवै ?
यु म्हारे सिर का सेहरा रै
किसनै ला दी आग जडाँ मैं ?...

क्यूँ जैत-धर्म के रोळे सैं ?
पान्ने, बगड़ अर ठोळे सैं
पढ़े-लिख्यां की बातां मैं बी
क्यूँ चलैं जहर के गोळे सैं ?
लच्छण तो त्हारे ओळे सैं
हाँ, लच्छण तो त्हारे ओळे सैं
कदे, उजड़ै यु रैन बसेरा रै !
किसनै ला दी आग जडाँ मैं ?...

चलैं पटाके, किते जळै पराळी
द्य्न धौळै करदी, रात या काळी
सूंघ मरैं, इस जहर नै सारे
जै ना गई लोगो, बात संभाळी।
खलिहान छोड कै भाज्या हाळी !
क्यूँ खेत छोड कै भाज्या हाळी ?
तेरा सड़काँ उप्पर डेरा रै
किसनै ला दी आग जडाँ मैं ?...

क्यूँ ईब तलक बी बोझ सैं छोरी ?
क्यूँ बंदड़ा मांगै, पिस्सयाँ की बोरी?
जिद बेटी जन्मै, कुणबा रौवै !
जणूं पाड़ लागग्या, हो गी चोरी !
फेर छेड़-छयाङ अर सीनाजोरी
क्यूँ बेसर्मी अर सीनाजोरी ?
सुणी, हो लिया नया सबेरा रै
किसनै ला दी आग जडाँ मैं ?...

कित्ते अलग हौंण का चढर्या भूंत
बाज्जै, दरिया के पाणी पै जूत
भाईचारा म्हारा बी बिग्ड़या
एक या ए आ री, बात कसूत
कोए बण्या बाग्गी, देसाँ का ऊत
ओ अपणयां नै मारै, देसाँ का ऊत
हाथाँ पै खून चचेरा रै !
किसनै ला दी आग जडाँ मैं ?..

सावित्रीबाई फुले, शहीद भगत सिंह व डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचारों की प्रासंगिकता

घरौंडा 13 मार्च 2022

बरसत गांव की सैनी चौपाल में सत्यशोधक फाउंडेशन व सृजन कला मंच द्वारा आज के दौर में सावित्रीबाई फुले, शहीद भगत सिंह व डॉ,. भीमराव अम्बेडकर के विचारों की प्रासंगिकता विषय पर विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी में मुख्य वक्ता कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में हिंदी विभागाध्यक्ष वह देस हरियाणा के संपादक डा. सुभाष चंद्र ने कहा कि शिक्षा ही सच्चा समाजवाद ला सकती है। सभी वर्गों की सत्ता में भागीदारी हो । समाजिक दृष्टिकोण से सभी को बराबरी का अधिकार मिले । यह तभी संभव है जब सभी शिक्षित हों। शिक्षा ही समानता का आधार है। यही बात प्रथम भारतीय शिक्षिका सावित्रीबाई फुले, शहीदे आजम भगत सिंह व संविधान निर्माता डॉक्टर भीमराव अंबेडकर ने कही है। इसलिए आम जनता को अपने बच्चों विशेषकर लड़कियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देना होगा। शिक्षा से वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा मिलेगा और सामाजिक भेदभाव, ऊंच-नीच , अंधविश्वास व पाखंडवाद जैसी सामाजिक बुराईयों से छुटकारा मिल सकेगा।

प्रो. सुभाष चंद्र ने कहा कि वही देश व समाज तरक्की करता है जो अपने देश के महापुरुषों के विचारों पर चलकर सत्य का शोधन करता है व उन्हें याद करता है।

कार्यक्रम में निशानेबाजी में राष्ट्रीय स्तर पर गोल्ड मेडल जीतने वाली गांव बरसत की लड़की अंजली सैनी व डेरा संजयनगर की पहली ग्रेजुएट लड़की फूलकुमारी को पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया। गांव बरसत की 12वीं कक्षा की छात्राओं बबीता,सविता,शिवानी,रितू,जसमीत व सानिया बलहेडा को शैक्षणिक उपलब्धि के लिए सम्मानित किया गया। कार्यक्रम का संचालन पंजाबी शिक्षक नरेश सैनी व प्रबंधन पंचायत सदस्य नरेश कुमार ने किया। इस मौके पर सामाजिक कार्यकर्ता राममेहर चौरा, डा. बीरबल सैनी, नरेश मैंबर, प्राध्यापक ललित कुमार, वीरभान, साहब सिंह, रामफल, संजय सैनी, सुनील मौर्या, रामेश्वर सैनी, फूल सिंह सैनी, प्रेम कुमार, कमल कुमार, कुलविंदर सिंह, सुमन लता, सोनिया सैनी, सतीश व अनिल गुढा, विनोद, शीशपाल सैनी, कुलदीप सिंह, डा.अंकित, शकील हिंदुस्तानी, देवेंद्र, अमित बोबी, हीरा लाल व सृजन कला मंच के कलाकार सुरेंद्र, विजय, शमीम, विक्रम, रविंद्र, अर्जुन जूनी वह सतना म जूनी उपस्थित रहे।

स्वतंत्रता आंदोलन और हिन्दी साहित्य

हिन्दी विभाग कु.वि.कु. और देस हरियाणा पत्रिका के सहयोग से भारतीय नवजागरण व हिन्दी साहित्य विषय पर व्याख्यान का आयोजन किया गया। व्याख्यान में मुख्य वक्ता के तौर पर डॉ. कृष्ण कुमार शामिल हुए। व्याख्यान की अध्यक्षता प्रोफेसर सुभाष चंद्र ने की और मंच संचालन श्री विकास साल्याण ने किया।

प्रोफेसर कृष्ण ने बताया "साहित्य समाज से पैदा होता है। जिस जाति व समुदाय को अपनी स्वतंत्रता को बोध नहीं वह आजाद रहकर भी मानसिक गुलाम रहता है और भविष्य में उसके लुप्त होने सम्भावना बढ़ जाती है। उन्होंने बताया भारतीय समाज में नवजागरण से भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की तरफ जो रास्ता जाता है उसमें विभिन्न साहित्यकारों, क्रांतिकारियों और समाज-सुधारको की क्या भूमिका रही है। स्वतंत्रता आंदोलन के समय साहित्यकार उस समय की अन्य समस्याओं पर प्रहार कर रहे थे। गांधी, नेहरू और अन्य नेताओं को भी बाद में ज्ञात हुआ की जो हम कर रहे हैं, वो साहित्य पहले से ही कर रहा था। अगर आप साहित्य को समझना चाहते हैं तो लोक साहित्य का अध्ययन करना शुरु

कर दीजिए। भारत जैसे देश को न तो संस्कृत, न अंग्रेजी और न हिन्दी से नहीं बल्कि सिर्फ उसकी लोक भाषाओं से समझा जा सकता है। साहित्यकारों के पास अंतर्दृष्टि होती है जिससे वह वर्तमान और भविष्य की घटनाओं का अंदाजा लगा लेता है। मुक्तिबोध ने जो उस समय लिखा वह आज घटित हो रहा है बस यही एक साहित्यकार की विशेषता होती है जिससे वह वर्तमान परिस्थितियों का अध्ययन कर भविष्य को देखता है।

जो भी बड़ा साहित्यकार या भाषाविद् होता है वह लोगों की आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग करता है और यही उसकी खूबसूरती होती है। जिसकी भाषा में स्पष्टता नहीं है तो उसके जीवन में भी स्पष्टता नहीं होती। जो काम परवर्ती साहित्यकार नहीं कर पाए उसे करना आज के साहित्यकारों का दायित्व है। भक्तिकाल स्वतंत्रता आंदोलन का अभिन्न अंग है, उसके बिना यह काम अधूरा रहेगा। स्वतंत्रता के लिए प्रेरित करने का काम या अपनी अस्मिता को पहचानने का काम भक्तिकाल से ही शुरु हो गया था।" इसके उपरांत गुरदीप भोसले, कपिल भारद्वाज, नरेश दहिया, रजत, दिनेश आदि विद्यार्थियों व शोधार्थियों ने डॉ.कृष्ण से सवाल जवाब किए। अध्यक्षीय टिप्पणी में प्रोफेसर सुभाष चंद्र जी ने कहा "कृष्ण कुमार ने अपनी बातें सूत्र शैली में रखकर इतने बड़े विषय को कम शब्दों में कहने का प्रयास किया। दोस्तों बात कहने की दो शैलियां होती हैं, सूत्र शैली और पुराण शैली। सूत्र शैली में बात को कह देना ही विद्वान की पहचान होती है। मुझे उम्मीद है की यह व्याख्यान आपके जीवन में मुख्य भूमिका निभाएगा और आप बार-बार इस व्याख्यान को याद करेंगे। आप सबने प्रश्न पूछे ये भी इस बात की तरफ इशारा है की आप कुछ न कुछ सीख रहें हैं, प्रश्न पूछना ही अपने आप में बड़ी बात है। अगर आपके पास प्रश्न हैं तो आपका जीवन सफल है।" कार्यक्रम के अंत में हिन्दी विभाग के प्राध्यापक डॉ. जसबीर जी ने व्याख्यान में पहुंचने पर सभी का हार्दिक अभिवादन किया। इस मौके पर हिन्दी विभाग के विद्यार्थी व शोधार्थी उपस्थित रहे।